## आचार्य कल्प पं० टोडरमलजी रचित

मैं हौं जीव द्रव्य नित्य चेतना स्वरूप मेरो।
लग्यो है अनादित कलंक कर्म मल को॥
ताही को निमित्त पाय रागादिक भाव भये।
भयो है शरीर का मिलाप जैसे खल को॥
रागादिक भावनिको पायक निमित्त पुनि।
होत कर्मबन्ध ऐसो है बनाव कलको॥
ऐसे ही भ्रमत भयो मानुष शरीर जोग।
बने तो बने यहां उपाय निज थलको॥
तिस पर्याय विष जो कोय, देखन जानन हारो सोय।
मैं जीव द्रव्य गुण भूप, एक अनादि अनन्त अरूप॥
कर्म उदय को कारणपाय रागादिक हो हैं दुखदाय।
ते मेरे औपाधिक भाव इनकों विनशें मैं शिवराव॥





श्री वीतरागाय नमः ।

आचार्य कल्प श्री प० टोडरमलजी द्वारा विरचित

मोक्षमार्ग प्रकाशक के ७ वें अधिकार से संगृहीत

# मोक्षमार्गकी वास्तविक दृष्टि

संग्रहकर्ता —

पूज्य श्री भगत सुमेरुचन्दजी वर्णी एवं श्री ब्रह्मचारी चांदमलजी
जयपुर निवासी के प्रवचनों से प्रभावित होकर
श्री दशलक्षणिक पर्व के उपलक्ष्य में धर्मपरायणा
नित्य स्वाध्याय प्रेमिका श्रीमती भूरीबाईजी
पूज्य मातेश्वरी श्री सेठ कन्हैयालालजी काला की
ओर से सादर उपहार रूप से समर्पित।

संशोधक तथा प्रस्तावना लेखक—

श्री प० कमलकुमारजी जैन शास्त्री गोइल्ल
न्यायव्याकरण, काव्यतीर्थ, साहित्य धर्मशास्त्री,
कलकत्ता।

प्रकाशक —

श्रीमान् सेठ लालचन्द्र कन्हैयालाल काला
जियागंज ( मुर्शिदाबाद ) बंगाल

प्रतियां २५ | वी नि सम्वत् २४८७ | मूल्य पांच बार स्वाध्याय की प्रतिज्ञा

जवाहिर प्रेस
१६१।१ हरीसन रोड,
कलकत्ता ७

# विषय-सूची

[illegible] प्रेस
११।१।१ हरीसन रोड,
कलकत्ता ७

# विषय-सूची





आचार्यकल्प अनल्प ज्ञान जल निधि जल्प पं० प्रवर टोडरमल्ल जी

—जैन पुस्तक भवन कलकत्ता के सौजन्य से

# जीवन परिचय

हिन्दी साहित्यके दिगम्बर जैन विद्वानोंमें पण्डित टोडरमल जीका नाम खासतौरसे उल्लेखनीय है। आप हिन्दीके गद्य-लेखक विद्वानोंमें प्रथम कोटिके विद्वान हैं। विद्वत्ताके अनुरूप आपका स्वभाव भी विनम्र और दयालु था और स्वाभाविक कोमलता सदाचारिता आपके जीवन सहचर थे। अहंकार तो आपको छू कर भी नहीं गया था। आंतरिक भद्रता और वात्सल्यका परिचय आपकी सौम्य आकृतिको देखकर सहज ही हो जाता था। आपका रहन-सहन बहुत ही सादा था। आध्यात्मिकताका तो आपके जीवनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। श्री कुन्दकुन्दादि महान् आचार्योंके आध्यात्मिक-ग्रन्थोंके अध्ययन, मनन एवं परिशीलनसे आपके जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ा हुआ था। अध्यात्मकी चर्चा करते हुए आप आनन्द विभोर हो उठते थे, और श्रोता-जन भी आपकी वाणी को सुनकर गद्‌गद् हो जाते थे। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं के आप अपने समयके अद्वितीय एवं सुयोग्य विद्वान थे। आपका क्षयोपशम आश्चर्यकारी था, और वस्तु तत्वके विश्लेषणमें आप बहुत ही दक्ष थे। आपका आचार एवं व्यवहार विवेकयुक्त और मृदु था।

यद्यपि पंडितजीने अपना और अपने माता पिता एवं कुटुम्बी-जनोंका कोई परिचय नहीं दिया और न अपने लौकिक जीवन पर ही प्रकाश डाला है, फिर भी लब्धिसार ग्रन्थकी टीका प्रशस्ति आदि

मागमी परसे उनके लौकिक और आध्यात्मिक जीवनका बहुत कुछ पता चल जाता है। प्रशस्तिके वे पद्य इस प्रकार हैं —

"मैं हूँ जीव-द्रव्य नित्य चेतना स्वरूप मेर्‌यो, लग्यो है अनादितैं कलंक कर्ममलको। ताहिको निमित्त पाय रागादिक भाव भये, भयो है शरीरको मिलाप जैसो खलको। रागादिक भावनिको पायकैं निमित्त पुनि, होत कर्मबन्ध ऐसो है बनाव कलको। ऐसें ही भ्रमत भयो मानुष शरीर जोग, बनै तो बनै यहाँ उपाव निज थलको ॥३६॥

दोहा—रमापति स्तुत गुन जनक जाको जोगीदास।<br>
सोई मेरो प्रान है धारै प्रकट प्रकास ॥३७॥

मैं आतम अरु पुद्गल खंध, मिलिकैं भयो परस्पर बंध।<br>
सो असमान जाति पर्याय, उपज्यो मानुष नाम कहाय ॥३८॥<br>
मात गर्भमें सो पर्याय, करिकैं पूरण अंग सुभाय।<br>
बाहर निकसि प्रकट जब भयो, तब कुटुम्बको भेलो भयो ॥३९॥<br>
नाम धरयो तिन हर्षित होय, टोडरमल्ल कहैं सब कोय।<br>
ऐसो यहु मानुष पर्याय, बधत भयो निज काल गमाय ॥४०॥<br>
देश ढुंढाहड़ माहि महान, नगर सवाई जयपुर थान।<br>
तामें ताको रहनो घनो, थोरो रहनो ओठै बनो ॥४१॥<br>
तिस पर्याय विषैं जो कोय, देखन जाननहारो सोय।<br>
मैं हूँ जीव द्रव्य गुनभूप, एक अनादि अनन्त अरूप ॥४२॥<br>
कर्म उदयको कारण पाय, रागादिक हो हैं दुखदाय।<br>
ते मेरे औपाधिक भाव, इनिकौं विनशैं मैं शिवराव ॥४३॥<br>
वचनादिक लिखनादिक क्रिया, वर्णादिक अरु इन्द्रिय हिया।<br>
ये सब हैं पुद्गलका खेल, इनिमें नाहिं हमारा मेल ॥४४॥

इन पत्रों परसे जहां पण्डितजीके आध्यात्मिक जीवनकी झांकी का दिग्दर्शन होता है वहां यह भी ज्ञात होता है कि उनके लौकिक जीवनका नाम टोडरमल था और पिताका नाम जोगीदास था और माताका नाम था रंभा देवी। दूसरे स्रोतोंसे यह भी स्पष्ट है कि आप खण्डेलवाल जातिके भूषण थे और आपका गोत्र 'गोदिका' था, जो भौंसा और बड़जात्या नामक गोत्रका ही नामान्तर जान पड़ता है। तथा आपके वंशज साहूकार कहलाते थे—साहूकारी ही आपके जीवन यापनका एक मात्र साधन था—और घर भी सम्पन्न था। इससे कोई आर्थिक कठिनाई नहीं थी।

आपके गुरुका नाम वंशीधर* था इन्हींसे पण्डितजीने प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की थी, आप अपनी क्षयोपशमकी विशेषताके कारण पदार्थ और उसके अर्थको शीघ्र ही अवधारण कर लेते थे। फलत कुशाग्र बुद्धि होनेसे थोड़े ही समयमें जैन सिद्धांतके सिवाय व्याकरण, काव्य, छन्द, अलंकार, कोष आदि विविध विषयोंमें दक्षता प्राप्त कर ली थी।

* यह पं० वंशीधर वही जान पड़ते हैं जिनका उल्लेख ब्रह्मचारी राय मल्लजीने अपनी जीवन परिचय पत्रिकामें तीस वर्षकी अवस्थाके लगभग उदयपुरसे पं० दौलतरामजीके पाससे जयपुर पं० टोडरमलजीसे मिलने आए थे और वे वहां नहीं मिल थे किन्तु पं० वंशीधरजी मिले थे, यथा—

'पीछे कितेक दिन रहि पं० टोडरमल जैपुरके साहूकारका पुत्र ताकै विशेष ज्ञान जानि वासूं मिलनके अर्थि जैपुर नगरी आए। सो यहां एक वंशीधर किंचित् संयमका धारक विशेष व्याकरणादि जैनमतके शास्त्रोंका पाठी सौ पचास लड़का पुरुष बायां जानमैं व्याकरण, छंद, अलंकार, काव्य, चरचा पढ़ै तासूं मिले। वीरवाणी वर्ष अंक ३।

यहां यह बात भी ध्यानमें रखने लायक है कि पण्डितजीके पूर्वज बीसपंथ आम्नायके माननेवाले थे, परन्तु पण्डितजीने वस्तुस्वरूप और भट्टारकीय प्रवृत्तियोंका अवलोकन कर तेरह पंथका अनुसरण किया और उनकी शिथिलताको दूर करनेका भी प्रयत्न किया। परन्तु जब उनमें सुधार होता न देखा किन्तु उल्टा विकृत परिणमन एवं कषायकी तीव्रता देखी, तब अपने परिणामोंको समकरि तेरा पंथकी शुद्ध प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहन देते हुए जनतामें सच्ची धार्मिक भावना एवं स्वाध्यायके प्रचारको बढ़ाया जिससे जनता जैनधर्मके मर्मको समझने में समर्थ हुई और फलतः अनेक सज्जन और स्त्रियां आध्यात्मिक चर्चाके साथ गोम्मटसारादि ग्रन्थोंके जानकार बन गये। यह सब उनके और रायमलजीके प्रयत्नका ही फल था।

आप विवाहित थे और आपके दो पुत्र थे जिनमें एकका नाम हरिचन्द और दूसरेका नाम गुमानीराम था। हरिचन्दकी अपेक्षा गुमानीरामका क्षयोपशम विशेष था और वह प्रायः अपने पिताके समान ही प्रतिभासम्पन्न था और इसलिये पिताके अध्ययन तथा तत्त्व चर्चादि कार्योंमें यथायोग्य सहयोग भी देने लगा था।

गुमानीराम स्पष्ट वक्ता* थे और आलाजन उनसे खूब सन्तुष्ट रहते थे। इन्होंने अपने पिताके स्वर्गगमनके दश बारह वर्ष बाद

* तथा तिनके पाछै टोडरमलजीके बड़े पुत्र हरिचन्द्रजी तिनतें छोटे गुमानीरामजी महाबुद्धिवान वक्ताके लक्षणकूं धारै तिनके पासि रहस्य किमनेक सुनिकर कछु ज्ञान पना भया। —सिद्धान्तसार टीका प्रशस्ति।

लगभग स० १८३७ में 'गुमान पथ' की स्थापना की थी[1]। गुमान-पथकी स्थापनाका मुख्य उद्देश्य उस समयकी धार्मिक शिथिलता एव प्रमादको दूर करते हुए धार्मिक स्थानोंमे पवित्रता पूर्वक ८४ आसादनाओं को बचाते हुए धर्मसाधनकी प्रवृत्तिको सुलभ बनाना था उस समय चूंकि भट्टारकोंका साम्राज्य था, और जनता भोली भाली थी इसीसे उनमें जो अधिक शिथिलता आगई थी उसे दूर कर शुद्ध मार्गकी प्रवृत्तिके लिये उन्हें 'गुमान पथ' की स्थापना का कार्य करना आवश्यक था और जिसका प्रचार शुद्धाम्नायके रूपमें आजभी मौजूद है। और उससे उस शैथिल्यादिको दूर करनेमें बहुत कुछ सहायता मिली है जयपुरमें दीवान बधीचन्दके मन्दिरमें गुमान पथकी स्थापना का कार्य सम्पन्न हुआ था। उसीमे उनकी स्वहस्त लिखित ग्रन्थोंकी कुछ प्रतिया मोक्षमार्ग प्रकाशक और गोम्मटसारादि की—मिली है। अस्तु—

## विषय परिचय

सातव अधिकारमे जैन मिथ्यादृष्टीका सांगोपांग विवेचन करते हुए एकान्त निश्चयावलम्बी जैनाभास और सर्वथा एकान्त व्यवहारावलम्बी जैनाभासका युक्तिपूर्ण कथन किया गया है जिसे पढ़ते ही जैन दृष्टिका वह सत्य स्वरूप सामने आजाता है और उसकी वह

---

[1] चुनाचे श्वेताम्बरी मुनि शांति विजयजीने अपनी मानवधर्म सहिता (शान्त सुधानिधि) नामक पुस्तक के पृष्ठ १९७ में लिखते हैं कि— बीस पन्थमें से फूटकर सवत् १७२९ में ये अलग हुये। जयपुरके तेरापथियोंमें से प० टोडरमलके पुत्र गुमानीरामजीने सवत् १८३७ में गुमान पथ निकाला।"

विपरीत कल्पना जो वस्तु स्थितिको अथवा व्यवहार निश्चयनयोंकी दृष्टिको न समझनेके कारण हुई थी दूर हो जाती है। इस महत्वपूर्ण प्रकरणमें मल्लजीने जैनियोंके आभ्यन्तर मिथ्यात्वके निरसनका बड़ा रोचक और सैद्धान्तिक विवेचन किया है और उभयनयोंकी सापेक्ष दृष्टिको स्पष्ट करते हुए देव शास्त्र और गुरुभक्तिकी अन्यथा प्रवृत्तिका निराकरण किया है और सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टिका स्वरूप तथा क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करण रूप पंचलब्धियोंका निर्देश करते हुए उक्त अधिकारको पूरा किया गया है।

# प्रस्तावना

यह तो सर्व विदित ही है कि भगवान कुन्दकुन्द स्वामीके समयसार आदि उत्तमोत्तम तथा महत्तम ग्रन्थोंमें अध्यात्म तत्त्व प्रतिपादन परक समयसार प्रवचनसार पचास्तिकाय प्रभृति ग्रन्थ राजाका विवेचन इधर कुछ वर्षो से परम आध्यात्मिक सन्त पूज्यश्री १०५ क्षुल्लक प० गणेश प्रसादजी वर्णीजी महाराज एव पूज्यश्री १०५ क्ष० मनोहरलालजी वर्णीजी महाराज एव पूज्यश्री कानजी स्वामी द्वारा विशदतया एव पयाप्तरूप से बड़े पैमाने पर बड़े ही सुन्दर ढगसे रोचकता तथा आकर्षकताके साथ होता चला आ रहा है जिससे समाजमें आध्यात्मिकताकी नवीन ज्योति-नई रोशनी पर्याप्त रूपसे—काफी तौरपर प्रसारित हो रही है, फैलायी जा रही है। उस नव ज्योति नई रोशनीमें हम लोगोंमें कुछ ऐसे लोग भी रोशन हो रहे हैं जो आध्यात्मिकताकी प्राण प्रतिष्ठा या आधारशिला भूत निश्चयनय तथा व्यवहारनयकी दृष्टिसे भ्रष्ट हो किसी एक तथा निरपेक्षनयके अधीन हो सन्मार्गसे हटकर उन्मार्गका अवलम्बन कर रहे हैं।

उक्त पूज्य प्रवक्ताओं द्वारा जो तत्त्वका विश्लेषणात्मक प्रतिपादन होता है उसमें निश्चय एव व्यवहार दोनों दृष्टियां सन्निहित रहती हैं। उनमें स्वाश्रितो निश्चय अर्थात् मुख्य रूपसे विवक्षित कहनेके लिये इष्ट आत्मद्रव्यके अधीन अशको जो जाने वह निश्चयनय है। पराश्रितो व्यवहार अर्थात् मुख्य रूपसे विव

क्षित कहनेके लिये उपटपर द्रव्यके भावको निमित्त रूपसे आत्म द्रव्यमें जो आरोपितकर जाने वह व्यवहारनय है।

इनमेसे जो किसी एकको छोड़कर अध्यात्म तत्त्वसे बहिर्मुख हो रहे हैं, उन महानुभावोंको अध्यात्म तत्त्वके अभिमुख होनेमें दोनों नयदृष्टियोंको गौण मुख्य न्यायसे मध्य दृष्टि (मद्देनजर) रखते हुए तत्त्व जिज्ञासुताके साथ तत्त्वज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इसी लक्ष्यको लेकर निम्न पंक्तियां लिखी जा रही हैं। आशा ही नहीं प्रत्युत पूर्ण विश्वास है कि आध्यात्मिक रसिक महाशय निम्न पंक्तियोंको आद्योपान्त—प्रारम्भसे अन्त तक पढ़कर स्व-लाभ होंगे।

## अध्यात्मतत्त्व मीमांसा

अध्यात्म तत्त्वकी महत्ता उपादेयता तथा उपयोगिता उसकी मीमांसा परीक्षा पर निर्भर है। अब अध्यात्म तत्त्वकी मीमांसाके सम्बन्धमें ही हम यहां कुछ आंशिक विचार व्यक्त करते हैं। अध्यात्म तत्त्वकी मीमांसाका अर्थ है आत्मासे भिन्न समस्त द्रव्य एवं उनके समस्त गुण पर्यायोंसे भिन्न केवल आत्मतत्त्वका ही पर्यवेक्षण तथा परिशीलन जिसमें किया जाय।

दूसरे शब्दोंमें एक मात्र सिर्फ खालिस आत्माके ही स्वरूपका निरीक्षण एवं परीक्षण करना अध्यात्म तत्त्व मीमांसा है।

जैसा कि भगवान कुन्द कुन्द स्वामीके समयसारकी छठवीं गाथा की व्याख्या करते हुए भगवान अमृतचन्द्र स्वामीने कहा है।

एव एवाशेष द्रव्यान्तर भावेभ्यो भिन्नत्वेनो पास्यमानः शुद्ध इत्यभिलप्यते ।

प्रकारान्तरसे शुद्धताका अर्थ है—समस्त कर्तृ कर्म, करण सम्प्रदान अपादान अधिकरण रूप षट् कारकोंके समुदायकी विभिन्न प्रक्रियाओंसे पृथक एकमात्र निर्मल आत्मानुभवका नामही शुद्ध अध्यात्म तत्व है। जैसाकि उन्ही भगवान कुन्द कुन्दस्वामीके समय सारकी ७३वीं गाथाकी व्याख्याके अवसर पर उन्ही भगवान अमृत चन्द्र स्वामीने कहा है,

"समस्त कारक चक्र प्रक्रियोत्तीर्ण निर्मलानुभूति मात्रत्वाच्छुद्ध. ।"

उक्त प्रकारसे प्रत्येक आत्मा शुद्धही है चाहे वह ससारी हो या सिद्ध।

आत्म स्वभावकी दृष्टिसे दोनों प्रकारकी आत्माएं शुद्धही हैं। स्वभावत अर्थात् पारिणामिक भाव रूप जो जीवत्व भाव हैं जिसमें कर्मकी चतुर्विधि चार प्रकारकी अवस्थाओंमें से किसीभी अवस्थाकी अपेक्षा न हो अर्थात् जो कर्मके उदय, उपशम, क्षय तथा क्षयोपशम इन, चारोंमें से किसीभी अवस्थाकी अपेक्षा न रखते हुए केवल सिर्फ एकमात्र आत्ममापेक्ष भावही है और जो चैतन्यमय है उस जीवत्व नामक पारिणामिक भावको ही उद्देश्य करके अध्यात्मतत्वकी मीमांसा की गई है जो उभयत्र दोनों ससारी एव मुक्त जीवोंमें सामान्यरूपसे उपलब्ध होती है। अन्तर फर्क—केवल

क्षित करनेके लिये दूसरे द्रव्यके अंशको निमित्त रूपसे आत्म द्रव्यमें जो आरोपितकर जाने वह व्यवहारनय है।

इनमेंसे जो किसी एकको छोड़कर अध्यात्म तत्त्वसे बहिर्मुख हो रहे हैं, उन महानुभावोंको अध्यात्म तत्त्वके अभिमुख होनेमें दोनों नयदृष्टियोंको गौण मुख्य न्यायसे मध्य दृष्टि (मद्देनजर) रखते हुए तत्त्व जिज्ञासुताके साथ तत्त्वज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इसी लक्ष्यको लेकर निम्न पंक्तियां लिखी जा रही हैं। आशा ही नहीं प्रत्युत पूर्ण विश्वास है कि आध्यात्मिक रसिक महाशय निम्न पंक्तियोंको आद्योपान्त—प्रारम्भसे अन्त तक पढ़कर लाभ-लाभ लेंगे।

## अध्यात्मतत्त्व मीमांसा

अध्यात्म तत्त्वकी ग्राह्यता उपादेयता तथा उपयोगिता उसकी मीमांसा-परीक्षा पर निर्भर है। अतः अध्यात्म तत्त्वकी मीमांसाके सम्बन्धमें ही हम यहां कुछ आत्मिक-विचार व्यक्त करते हैं। अध्यात्म तत्त्वकी मीमांसाका अर्थ है आत्मासे भिन्न समस्त द्रव्य एवं उनके समस्त गुण पर्यायोंसे भिन्न केवल आत्मतत्त्वका ही पर्यवेक्षण तथा परिशीलन जिसमें किया जाय।

दूसरे शब्दोंमें पर मात्र सिर्फ त्यागिस आत्माके ही स्वरूपका निरीक्षण एवं परीक्षण करना अध्यात्म तत्त्व मीमांसा है।

जैसा कि भगवान कुन्द-कुन्द स्वामीके समयसारकी छठवीं गाथाकी व्याख्या करते हुए भगवान अमृतचन्द्र स्वामीने कहा है।

एव एवाशेष द्रव्यान्तर भावेभ्यो भिन्नत्वेनो पास्यमान : शुद्ध इत्यभिलप्यते ।

प्रकारान्तरसे शुद्धताका अर्थ है—समस्त कर्तृ कर्म, करण, सम्प्रदान अपादान अधिकरण रूप षट् कारकोंके समुदायकी विभिन्न प्रक्रियाओंसे पृथक एकमात्र निर्मल आत्मानुभवका नामही शुद्ध अध्यात्म तत्त्व है। जैसाकि उन्हीं भगवान कुन्द कुन्दस्वामीके समय सारकी ७३वीं गाथाकी व्याख्याके अवसर पर उन्हीं भगवान अमृत चन्द्र स्वामीने कहा है,

"समस्त कारक चक्र प्रक्रियोत्तीर्ण निर्मलानुभूति मात्रत्वाच्छुद्ध. ।"

उक्त प्रकारसे प्रत्येक आत्मा शुद्धही है चाहे वह ससारी हो या सिद्ध।

आत्म स्वभावकी दृष्टिसे दोनों प्रकारकी आत्माए शुद्धही हैं। स्वभावत अर्थात् पारिणामिक भाव रूप जो जीवत्व भाव है जिसमें कर्मकी चतुर्विध-चार प्रकारकी अवस्थाओंमें से किसीभी अवस्थाकी अपेक्षा न हो अर्थात् जो कर्मके उदय, उपशम, क्षय तथा क्षयोपशम इन, चारोंमें से किसीभी अवस्थाकी अपेक्षा न रखते हुए केवल सिर्फ एकमात्र आत्ममापेक्ष मात्रही है और जो चैतन्यमय है उस जीवत्व नामक पारिणामिक भावको ही उद्देश्य करके अध्यात्मतत्त्वकी मीमांसा की गई है जो उभयत्र दोनों ससारी एव मुक्त जीवोंमें सामान्यरूपसे उपलब्ध होती है। अन्तर फर्क-केवल

विशेषगुणोंकी पूर्णता तथा अपूर्णतासे है। अर्थात् जिन्होंने ज्ञान चेतनाके प्रबल बलसे अपने ज्ञातृत्व ज्ञातापन तथा द्रष्टृत्व-द्रष्टापन स्वभावका दृढ निश्चय कर बाह्य एवं आभ्यन्तर चारित्रके द्वारा अपने आत्माको अन्तरात्मासे परमात्मपदमें प्रतिष्ठित किया है ऐसा परमात्मपदही अध्यात्म तत्त्व द्वारा साध्यरूपसे लक्षित है परन्तु अनादित आत्मा अनात्म भूत जड़ पुद्गलोंसे सम्बद्ध है। अतएव विभाव भावोंसे परिणमित परिणमन करता हुआ चला आरहा है जिन आत्माओंने अपनी आत्मिक ज्ञान शक्तिके द्वारा अनादि सम्बद्ध दोनों द्रव्योंके स्वभावगत पृथक पृथक भावोंका ज्ञान प्राप्त किया है उन्होंने ही परसे भिन्न अपने आत्म द्रव्यको पृथक करनेका सफल प्रयास किया औरवे अपने प्रयासमें पूर्णतया सफल हुए। उनकी उस सफलता का नामही सिद्ध अवस्था है जो आत्माके समस्त गुणोंक परिपूर्ण विकास रूप है। इससे भिन्न ससार अवस्थामें अवस्थित प्रत्येक आत्माके समस्तगुण पूणरूपेण अविकसित हैं। उनके अविक सित रहनेका एकमात्र कारण आत्माका विभाव परिणमन है। जिसका निमित्त कारण कार्माण पुद्गलोंका आत्माके साथ एक क्षेत्रावगाह रूप सम्बन्ध है। जो दूध और पानीके समान ऐकमेक हो रहा है। ऐसी अशुद्धिका दूरकर पूर्ण आत्म शुद्धिका ही लक्ष्यमें रखकर प्रत्येक मुमुक्षु अशुद्धिताके कारणभूत विभाव भावों,तथा उनके, बाह्य साधनभूत देह गेह आदि परपदार्थों को हेय समझकर ही उन्हें त्यागनेका उपक्रम करता है क्योंकि वह निम्न प्रकारसे आत्म-शुद्धि परही लक्ष्य

मैं सर्वदा वस्तुतः एक हूं अद्वितीय हूं, शुद्ध हूं परभावोंसे शून्य हूं, ज्ञान तथा दर्शनरूप हूं, अमूर्तिक हूं, —स्पर्श रसगन्धवर्णसे रहित हूं, मेरे स्वरूपमें अन्य द्रव्यका परमाणुभी नहीं है मैं तो एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभाव हूं, जैसाकि भगवान कुन्दकुन्द स्वामीके नियमसारकी निम्नगाथासे स्पष्टतया प्रकट है—

> अहमिक्को खलु सुद्धोणाण दंसणमयो सदारूवी
> णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणु मित्तंपी।

और भी-मेरा आत्मा एक है। नित्य है, अविनाशी है ज्ञान दर्शन लक्षण युक्त है। इससे भिन्न जितनेभी भाव हैं वे सबके सब पर पुद्गलके संयोग सम्बन्धसे उत्पन्न हुए हैं। अतएव परभाव है। बाह्य भाव हैं मेरे स्वभाव भाव नहीं है। किन्तु विभाव भाव हैं। औपाधिक भावहैं। जैसाकि उन्हीं भगवान कुन्दकुन्द स्वामीकी निम्न गाथासे स्फुट हैं।

> एगो मे सासदो आदा णाण दंसण लक्खणो
> सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोग लक्खणा।

और भी शुद्ध द्रव्यके निरूपणमें संलग्न बुद्धिवाला तत्त्वज्ञानी,अन्तरात्म स्वयं आत्म स्वरूपका अवलोकन करता है तब यही देखता है कि किसी भी द्रव्यमें अन्य-दूसरे द्रव्यका परमाणु प्रमाण अंश भी नहीं है। ज्ञान चक्षु से जो कुछ भी अवलोकित है वह एक मात्र अद्वितीय आत्म द्रव्य ही है। अन्य कुछ भी नहीं है। और न था। और न होगा।

सयोगजभाव जो हेय त्याज्य कोटिमें स्वीकृत हुए हैं स्वतः ही अभाव को प्राप्त हो जायगे और फिर आत्माकी शुद्धिमें अनन्त काल तक अनुपलब्ध ही रहेंगे।

अतः आत्मिक शुद्धिकी परिपूर्णताके हेतु एवं परद्रव्यके सर्वथा मूलोच्छेदके लिये बाह्य एवं आभ्यन्तर दोनों प्रकारके चारित्रका धारण-पालन और आचरण नितांत आवश्यक निहायत जरूरी है। बिना चारित्रके परद्रव्यके संयोगका पूर्ण वियोग असम्भव ही है। केवल आत्मिक शुद्धिकी श्रद्धा प्रतीतिमात्र आत्माको अनादि कालसे सम्बद्ध परद्रव्यसे उन्मुक्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकती, किन्तु वह अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकारके परिपूर्ण चारित्रकी अपेक्षा रखती है तभी तो वह श्रद्धा सत् श्रद्धा है अन्यथा नहीं। अतः श्रद्धावान सुदृष्टिको चारित्रकी ओर प्रवृत्त होना चाहिये।

इस प्रकारसे स्वभावतः शुद्ध-स्वच्छ-निर्मल निरञ्जन यह आत्म परद्रव्यके संयोगसे ही नाना प्रकारके चतुर्गतिके दुःखोंका पात्र बन रहा है। पञ्च परावर्तन रूप संसारमें संसरण कर रहा है अतएव उक्त प्रकारके संसारका मूल पर द्रव्यका संयोग है उस संयोगसे वियोग प्राप्त करनेके हेतु अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि जो बाह्य तत्त्वसे सर्वथा भिन्न आत्म तत्त्वमें दृष्टिको स्थिरकर रहा है वह अविरत सम्यग्दृष्टि विरत बननेके अर्थात् चारित्र धारण करनेकी ओर अभिमुख हो रहा है। ऐसी स्थितिमें उसे अनशन आदि बाह्य तथा प्रायश्चित्त आदि आभ्यंतर तपोंमें प्रवृत्ति रूप चारित्र धारण करनेकी नितान्त आवश्यकता प्रतीत होती है। बिना तपश्चरणके आत्माकी अनादिकालिक अशुद्धिताका अभाव

नहीं हो सकता और बिना उसके शुद्धिताका प्राप्त होना नितान्त दुःसाध्य ही नहीं प्रत्युत असम्भव है।

## चारित्र धारण करनेकी आवश्यकता

अविरत सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी होते हुए भी देश चारित्री एवं सकल चारित्री बननेके लिये उद्यमशील रहता है। क्योंकि आचार्योंने मोक्षमार्गता रत्नत्रयकी परिपूर्णतामें स्वीकार की है। हां,यह ठीक है कि सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञानकी परिपूर्णता केवली भगवानके तेरहवें गुण स्थानमें ही सम्पन्न हो जाती है परन्तु चारित्रकी अपूर्णता होनेसे वहां मोक्षका अलाभ ही है। उसका लाभ तो यथाख्यात चारित्रके पूर्ण होते ही होता है। अतः सम्यग्दृष्टिको चारित्रका आराधन मोक्ष प्राप्ति के हेतु अति ही अनिवार्य है।

## चारित्रके भेद और स्वरूप

यह चारित्र सकल चारित्र एवं विकल चारित्रके भेदसे आचार्यों द्वारा द्विविध रूपसे वर्णित है। अतः चारित्रकी ओरसे उपेक्षाका होना सम्यग्दृष्टिके नितान्त असम्भव है। वह सम्यग्दृष्टि चारित्रका निरोधक या विरोधक होही नहीं सकता। क्योंकि सम्यग्दृष्टि स्वच्छन्द अनर्गल प्रवृत्ति कर ही नहीं सकता। इसी बातकी पुष्टि मोक्षमार्ग प्रकाशकके सातवें अधिकारमें अविकल रूपसे की गई है। निश्चय चारित्र आत्म-स्वरूपकी स्थिरतारूप है जो सर्वथा मोहके एवं योगके अभाव होनेपर ही प्रादुर्भूत होता है। और समस्त अशुभ क्रियाओं अर्थात् हिंसा झूठ चोरी, कुशील एवं परिग्रह रूप समस्त पाप

(२) द्वितीय आध्यात्मिक सन्त पूज्य श्री १०५ क्षु० पण्डित मनोहर-लालजी वर्णी जी महाराज हैं जो जैन समाज में छोटे वर्णीजी के नाम से विख्यात हैं। आप तो यथानाम तथा गुण हैं आपने अपने वर्तमान स्वल्प जीवनमें जो अनल्प तत्त्वज्ञानका उपार्जन किया है वह आपकी अप्रतिम प्रतिभा का परिचायक है। आपके अगाध आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान ने तो जैन समाज में अद्वितीय एवं अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न कर दी है। आपने अपने ज्ञान भण्डार को जन साधारण में विविध ग्रन्थोंकी रचना द्वारा प्रचारित एवं प्रसारित किया है। अतएव आप द्वितीय आध्यात्मिक सन्त हैं। हम आपके सुदीर्घजीवी होने की हार्दिक कामना करते हैं। तथा श्रीमज्जिनेन्द्र देवसे एतदर्थ बहुश प्रार्थना करते हैं।

(३) तृतीय आध्यात्मिक सन्त पूज्यश्री कानजी स्वामी हैं। जिन्होंने प्रात स्मरणीय पूज्यपाद निर्ग्रन्थ आचार्यवर्य भगवान कुन्द कुन्द स्वामीके समयसार, प्रवचनसार, पचास्तिकाय, नियमसार आदि महानतम ग्रन्थोंका अध्ययन, मनन एव चिन्तन कर उनके सत्यार्थ रहस्य को प्रकट कर (खोलकर) जनताके समक्ष प्रस्तुत किया है।

आप तो वर्तमान में विशेष रूपसे गुजरात-काठियावाड़ प्रान्तके सर्वोपरि दिगम्बर जैन धर्मानुयायी परम आध्यात्मिक तत्त्ववेत्ता सन्त हैं। आपके द्वारा जो आध्यात्मिक तत्त्वज्ञानकी सरिता अविछिन्न रूप से प्रवाहित हो रही है वह अनुपम, अतुल एव अवर्णनीय तथा अकथनीय है। आपकी वाणीमें ओज है, अलौकिक माधुर्य है। एव है औदार्य एव गाम्भीर्य। आपने बहुधा भगवान कुन्द कुन्द स्वामी के पूर्वोक्त

समस्त आध्यात्मिक ग्रन्थों पर सुबोध एव सरल तथा भावपूर्ण तत्त्व तलस्पर्शी मार्मिक विवेचनात्मक टीकाये की है। आपकी व्याख्यान पद्धति असदृश बेजोड है तत्त्व को श्रोताओंके मानस पटल पर अङ्कित कर देना आप ही जैसे असाधारण वक्ता की वचन-रचना चातुरी पर निर्भर है। आजका सोनगढ़ परम आध्यात्मिकता एव तत्त्वज्ञानका मुगट हो रहा है। जैनसमाज ही नहीं परन्तु जैनेतर समाज भी आपकी आध्यात्मिक तात्त्विक विवेचनाओंसे पूर्णतया प्रभावित है। आपका तात्त्विक रहस्य उद्भावन सत्यता एव तथ्यता से ओतप्रोत है। आपके सानिध्यसे गुजरातप्रान्त मे दिगम्बर धर्म का जो प्रचार एव प्रसार हो रहा है वह इस बीसवीं सदीका एक अद्वितीय अनोखा एव असाधारण कार्य है। आपकी अबाध अक्षुण्ण अलौकिक एव अनुपम क्षायोपशमिक ज्ञानकी प्रगल्भ प्रतिभा ने महत्तम श्रेष्ठतम एव उत्तमोत्तम शिक्षितों के चेतपट पर आध्यात्मिक तत्त्वज्ञानकी एमी अनिर्वचनीय छाया (छाप) स्थापित कर दी है जो सदियों तक अविच्छिन्न सतति के रूपमे सचालित होती रहेगी। अतएव हम आपके सुग्राह्य समुपादेय आध्यात्मिक तत्त्वज्ञानकी सुदाराध्यता एव समुपास्यता की आन्तरिक सद्भावना पूर्णश्रद्धा से नतमस्तक होते हुए आपके चिरायु होने की श्री मज्जिनेन्द्र प्रभु से भावना भाते है।



कर उसे अचला बनाया है हम उन जिनवाणीके उपासकोंकी हृदयसे प्रशंसा करते हैं और अध्यात्म प्रेमियोंसे पुन पुन प्रार्थना करते हैं कि वे इस अधिकारके इस पृथक प्रकाशनसे अधिकसे अधिक लाभ उठाकर मिथ्यामार्गसे सन्मार्गमें आकर अपना एव जगतका कल्याण करें।



## अन्तिम प्रार्थना

यद्यपि इस परम हितकारी अधिकारके पूर्णतया शुद्धरूपसे प्रकाशित करनेके हेतु हमने प्रूफ संशोधनमें पूर्ण सावधानीसे काम लिया है तथापि दृष्टि दोषसे यत्र तत्र अशुद्धियोंका रह जाना सम्भव है। अत स्वाध्याय प्रेमी सज्जन शुद्ध करके लाभ उठाय और अग्रिम संस्करणमें उन अशुद्धियोंको दूर करनेके हेतु हमें आदेशित करें ऐसी हमारी अन्तिम प्रार्थना है।

आध्यात्मिक सज्जनोंका विनम्र सेवक—

**कमल कुमार जैन गोइल्ल,**

शास्त्री न्याय व्याकरण काव्यतीर्थ साहित्यमहोपाध्याय

C/o दानवीर, रायबहादुर, जैन रत्न, सेठ गजराज गंगवाल।

नं० ४, थियेटर रोड, कलकत्ता।

मंगलाचरणम्

ओंकार बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमोनमः
अविरल शब्द घनौघ, प्रक्षालित सकल भूतल कलङ्का।
मुनि भिरुपासित तीर्था, सरस्वती हरतु नोदुरितम्॥
अज्ञान तिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

श्रीपरम गुरवेनमः श्री परम्पराचार्यगुरवेनमः सकल कलुष विध्वंसक श्रेयसाम्परिवर्धक धर्मसम्बन्धक भव्य जीवमन प्रतिबोधक पुण्यप्रकाशक पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं मोक्षमार्ग प्रकाशकं वास्तविकदृष्टिं नाम ग्रंथस्य मूलग्रन्थ कर्तार श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रंथकर्तारः श्रीगणधर देवा प्रतिगण धर देवाश्च तेषांवचनानुसारतामासाद्य श्रीमतीभगवत कुन्द कुन्दाचार्यस्य आम्नाये श्रीमता आचार्यकल्पेन विद्ववरण पण्डित टोडरमल्लेन निरचितमिदमृशास्त्रम्।

मंगल भगवान वीरो मंगलं गौतमागणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्
मंगलमय मंगल करण वीतराग विज्ञान
नमो ताहि जातैं भये अर्हन्तादिमहान
करि मंगल करिहौं महाग्रन्थ करनको काज
जातै मिलै समाज सब पावै निजपदराज
मंगल श्रोतार सावधानतया श्रृण्वन्तु

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

आचार्यकल्प प० टोडरमलजीकृत

# मोक्षमार्ग प्रकाशक

## सातवां अधिकार

*[ जैनमिथ्यादृष्टिका निरूपण ]*

दोहा।

**इस भवतरुको मूल इक, जानहु मिथ्याभाव।**
**ताकौ करि निर्मूल अब, करिए मोक्ष उपाव ॥१॥**

अर्थ—जे जीव जैनी हैं, जिन आज्ञाकौं मानै हैं, अर तिनकै भी मिथ्यात्व रहै है ताका वर्णन कीजिए है जातैं इस मिथ्यात्व वैरीका अंश भी बुरा है, तातैं सूक्ष्ममिथ्यात्व भी त्यागने योग्य है। तहाँ जिन आगमविषै निश्चय व्यवहाररूप वर्णन है। तिनविषै यथार्थका नाम निश्चय है। उपचारका नाम व्यवहार है। सो इनका स्वरूपकौं न जानते अन्यथा प्रवर्त्तै हैं, सोई कहिए है

### [ एकान्त निश्चयावलम्बी जैनाभास ]

कोई जीव निश्चयकौं न जानते निश्चयाभासके श्रद्धानी

होइ आपकौं मोक्षमार्गी मानै हैं। अपने आत्माकौं सिद्धसमान अनुभवै हैं। सो आप प्रत्यक्षसंसारी हैं। भ्रमकरि आपकौं सिद्ध मानै सोई मिथ्यादृष्टी शास्त्रनिविषैं जो सिद्धसमान आत्माकौं कह्या है, सो द्रव्यदृष्टिकरि कह्या है, पर्याय अपेक्षा समान नाहीं हैं। जैसें राजा अर रंक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान हैं, राजापना रंकपनाकी अपेक्षा तौ समान नाहीं। तैसें सिद्ध अर संसारी जीवत्वपनेकी अपेक्षा समान हैं, सिद्धपना संसारीपनाकी अपेक्षा तौ समान नाहीं। यहु जैसें सिद्ध शुद्ध हैं, तैसें ही आपकौं शुद्ध मानै। सो शुद्ध अशुद्ध अवस्था पर्याय है। इस पर्यायअपेक्षा समानता मानिए, सो यहु मिथ्यादृष्टि है। बहुरि आपकै केवलज्ञानादिकका सद्भाव मानै, सो आपकै तौ क्षयोपशमरूप मतिश्रुतादि ज्ञानका सद्भाव है। क्षायिकभाव तौ कर्म्मका क्षय भए होइ है। यह भ्रमतैं कर्म्मका क्षय भए बिना ही क्षायिकभाव मानै। सो यहु मिथ्यादृष्टी है। शास्त्रविषै सब जीवनिका केवलज्ञानस्वभाव कह्या है, सो शक्तिअपेक्षा कह्या है। सर्वजीवनिविषैं केवलज्ञानादिरूप होनेकी शक्ति है। वर्तमान व्यक्तता तौ व्यक्त भए ही कहिए।

## [ केवलज्ञान निषेध ]

कोऊ ऐसा मानै है, आत्माके प्रदेशनिविषै तौ केवलज्ञान ही है, ऊपरि आवरणतैं प्रगट न हो है। सो यहु भ्रम है। जो

केवलज्ञान होइ तौ वज्रपटलादि आडे होतैं भी वस्तुकौं जानैं। कर्मको आड आए कर्म अटके। तातैं कर्मके निमित्ततैं केवलज्ञानका अभाव ही है। जो याका सर्वदा सद्भाव रहै है, तौ याकौं पारिणामिकभाव कहते, सो यहु तौ क्षायिकभाव है। जो सर्वभेद जामैं गर्भित ऐसा चैतन्यभाव सो पारिणामिक भाव है। याकी अनेकअवस्था मतिज्ञानादिरूप वा केवलज्ञानादिरूप हैं, सो ए पारिणामिकभाव नाहीं। तातैं केवलज्ञानका सर्वदा सद्भाव न मानना। बहुरि जो शास्त्रनिविषैं सूर्यका दृष्टान्त दिया है, ताका इतना ही भाव लेना, जैसैं मेघपटल होत सूर्यप्रकाश प्रगट न हो है, तैसैं कर्मउदय होतैं केवलज्ञान न हो है बहुरि ऐसा भाव न लेना, जैसैं सूर्यविषैं प्रकाश रहै है, तैसैं आत्मविषैं केवलज्ञान रहै है। जातैं दृष्टांत सर्वप्रकार मिलै नाहीं। जैसैं पुद्गलविषैं वर्णगुण है, ताकी हरित पीतादि अवस्था है। सो वर्तमानविषैं कोई अवस्था होतैं अन्य अवस्थाका अभाव ही है। तैसैं आत्मविषैं चैतन्यगुण है, ताकी मतिज्ञानादिरूप अवस्था है। सो वर्तमान कोई अवस्था होत अन्य अवस्थाका अभाव है।

बहुरि कोऊ कहै, कि आवरण नाम तौ वस्तुके आच्छादनेका है, केवलज्ञानका सद्भाव नाहीं है, तौ केवलज्ञानावरण काहेकौं कहौ हौ ?

ताका उत्तर—यहां शक्ति है ताकौं व्यक्त न होने दे, इस अपेक्षा आवरण कहा है। जैसे देशचरित्रका अभाव होतैं शक्ति

घातनेकी अपेक्षा अप्रत्याख्यानावरण कषाय कहा, तैसे जानना। बहुरि ऐसे जानौं—वस्तुविषै जो परनिमित्ततैं भाव होय, ताका नाम औपाधिकभाव है। अर परनिमित्तबिना जो भाव होय, सो ताका नाम स्वभावभाव है। सो जैसे जलकै अग्निका निमित्ततातै उष्णपनौ भयो, तहां शीतलपनाका अभाव ही है। परन्तु अग्निका निमित्त मिटे शीतलता ही होय जाय तातें सदाकाल जलका स्वभाव शीतल कहिए। जातैं ऐसी शक्तिसदा पाइए है बहुरि व्यक्त भए स्वभाव व्यक्त भया कहिए। कदाचित व्यक्तरूप हो है। तैसे आत्माकै कर्म्मका निमित्त होत अन्यरूप भयो, तहा केवलज्ञानका अभाव ही हैं। परन्तु कर्म्मका निमित्त मिटै सर्वदा केवलज्ञान होय जाय। तातैं सदाकाल आत्माका स्वभाव केवलज्ञान कहिए है। जातैं ऐसी शक्ति सदा पाईए है। व्यक्त भए स्वभाव व्यक्त भया कहिए। बहुरि जैसे शीतलस्वभावकरि उष्ण जलकौं शीतल मानि पानादि करै, तौ दाझना ही होय। तैसें केवल ज्ञानस्वभावकरि अशुद्धआत्माकौं केवलज्ञानी मानि अनुभवै, तौ दुखी ही होय। ऐसें जे केवलज्ञानादिकरूप आत्माकौं अनुभवै हैं, ते मिथ्यादृष्टि हैं। बहुरि रागादिक भाव आपकै प्रत्यक्ष होत भ्रमकरि आत्माका रागादिरहित मानै, सो पूछिए है ए रागादिक तौ होते देखिए है, ए किस द्रव्यके अस्तित्वविषै हैं। जो शरीर वा कर्मरूपपुद्गलके अस्तित्वविषै होय तो ए भाव अचेतन वा मूर्तीक कहो। सो तो ए रागादिक प्रत्यक्ष चेतनता लिए

अमूर्त्तीकभाव भासै हैं। तातैं ए भाव आत्माहीके हैं। सोई समयसारके कलशविषैं कह्या है—

[ कथंचित् आत्मा ही रागादिकका करता है ]

कार्यत्वादकृतं न कर्म्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
रज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषङ्गात्कृतिः ।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्त्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत्पुद्गलः ॥१॥

[ सर्ववि० ११ ]

याका अर्थ यहु—रागादिरूप भावकर्म है, सो काहूकरि किया नाहीं है ऐसा नाहीं, जातैं यह कार्यभूत है। बहुरि जीव अर कर्मप्रकृति इनि दोऊनिका भी कर्त्तव्य नाहीं। जातैं ऐसैं होय तौ अचेतनकर्म्म प्रकृतिकै भी तिस भावकर्म्मका फल सुखदुख ताका भोगना होइ, सो असम्भव है। बहुरि एकली कर्म्म प्रकृतिका भी यहु कर्त्तव्य नाहीं। जातैं वाकै अचेतनपनो प्रगट है। तातैं इस रागादिकका जीव ही कर्त्ता है। अर सो रागादिक जीवहीका कर्म्म है। जातैं भावकर्म्म तौ चेतनाका अनुसारी है, चेतना बिना न होइ। अर पुद्गल ज्ञाता है नाहीं। ऐसैं रागादिकभाव जीवके अस्तित्वविषैं हैं। जो रागादिक भावनिका निमित्त कर्म्महीकौं मानि आपकौं रागादिकका

अकर्त्ता मानें हैं, सो कर्त्ता तौ आप अर आपकौं निरुद्यमी होय प्रमादी रहना, तातैं कर्म्महीका दोष ठहरावै है। सो यहु दुख-दायक भ्रम है। सोई समयसारका कलशाविषै कह्या है

रागजन्मनि निमित्तता परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते।
उत्तरन्ति नहि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धय ॥

[ सर्व वि० २८ ]

जे जीव रागादिकको उत्पत्तिविषैं परद्रव्यहीकौं निमित्त-पनो मानैं हैं, ते जीव भी शुद्धज्ञानकरि रहित हैं अंधबुद्धि जिनकी ऐसे होते संते मोहनदीकौं नाहीं उतरैं हैं। बहुरि समयसारका 'सर्वविशुद्धि अधिकार' विषैं जो, आत्माकौं अकर्त्ता मानै है, अर यहु कहै है--कर्म ही जगावै सुवावै है, परघात कर्मतैं हिंसा है, वेद कर्मतैं अब्रह्म है, तातैं कर्म ही कर्त्ता है, तिस जैनीकौं सांख्यमती कह्या है। जैसे सांख्यमती आत्माकौं शुद्ध मानि स्वच्छन्द हो है, तैसे ही यहु भया। बहुरि इस श्रद्धानतैं यहु दोष भया, जो रागादिक अपने न जानैं, आपकौं अकर्त्ता मान्या, तब रागादिक होनेका भय रह्या नाहीं, वा रागादिक मेटनेका उपाय करना रह्या नाहीं, तब स्वच्छन्द होय खोटे कर्म बांधि अनंतसंसारविषै रुलै है।

[ कथंचित् पुद्गलही रागादिकका करता है ]

यहां प्रश्न जो समयसारविषै ही ऐसा कह्या है

**वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा**
**भिन्ना भावा सर्व्वे एवास्य पुंस ❀।**

याका अर्थ—वर्णादिक वा रागादिक भाव हैं, ते सर्व ही इस आत्माकै भिन्न हैं। बहुरि तहाँ ही रागादिककौं पुद्गलमय कहे हैं। बहुरि अन्य शास्त्रनिविर्षं भी रागादिकतैं भिन्न आत्माकौं कह्या है, सो यह कैसे है?

ताका उत्तर रागादिकभाव परद्रव्यके निमित्ततैं औपाधिकभाव हो हैं। अर यहु जीव तिनिकौं स्वभाव जानैं हैं। जाकौं स्वभाव जानै, ताकौं बुरा कैसें मानै, वा ताके नाशका उद्यम काहेकौं करै। सो यहु श्रद्धान भी विपरीत है। ताके छुडावनेकौं स्वभावकी अपेक्षा रागादिककौं भिन्न कहे हैं। अर निमित्तकी मुख्यताकरि पुद्गलमय कहे हैं। जैसैं वैद्य रोग मेट्या चाहे है। जो शीतका आधिक्य देखै, तौ उष्ण औषधि बतावै अर आतापका आधिक्य देखै, तौ शीतल औषधि बतावै। तैसैं श्री गुरु रागादिक छुडाया चाहे है। जो रागादिक परका मानि स्वच्छन्द होय, निरुद्यमी होय ताकौं उपादानकारणकी मुख्यताकरि रागादिक आत्माका है ऐसा श्रद्धान कराया।

---

❀ वर्णाद्या रागमोहादयो वा भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ॥५॥
—जीवाजीवा ॥५॥

बहुरि जो रागादिक आपका स्वभाव मानि तिनिका नाशका उद्यम नाहीं करैं हैं, ताकौ निमित्तकारणकी मुख्यताकरि रागादिक परभाव हैं, ऐसा श्रद्धान कराया है। दोऊ विपरीत श्रद्धानतैं रहित भए सत्यश्रद्धान होय, तब ऐसा मानैं ए रागादिक भाव आत्माका स्वभाव तौ नाहीं हैं कर्मके निमित्ततैं आत्माके अस्तित्वविषै विभावपर्याय निपजै हैं। निमित्त मिटे इनका नाश होतैं स्वभाव भाव रहि जाय है। तातैं इनिके नाशका उद्यम करना।

## [ अतरग बाह्य निमित्त मिलने मिलाने पर ही कार्यकी सिद्धि होती है । ]

यहां प्रश्न—जो कर्मका निमित्ततैं ए हो हैं, तौ कर्मका उदय रहै तावत् विभाव दूर कैसैं होय ? तातैं याका उद्यम करना तौ निरर्थक है।

ताका उत्तर एक कार्य होनेविषै अनेक कारण चाहिए हैं। तिनविषैं जे कारण बुद्धिपूर्वक होंय, तिनकौं तो उद्यम करि मिलावै अर अबुद्धिपूर्वक कारण स्वयमेव मिलैं तब कार्यसिद्धि होय। जैसैं पुत्र होनेका कारण बुद्धिपूर्वक तौ विवाहादिक करना है, अर अबुद्धि पूर्वक भवितव्य है। तहां पुत्रका अर्थी विवाहादिकका तौ उद्यम करै, अर भवितव्य स्वयमेव होय, तब पुत्र होय। तैसे विभाव दूरि करनेके कारण बुद्धि पूर्वक तौ तत्त्वविचारादिक

हैं अर अबुद्धिपूर्वक मोहकर्मका उपशमादिक हैं। सो ताका अर्थी तत्त्वविचारादिकका तौ उद्यम करै, अर मोहकर्मका उपशमादिक स्वयमेव होय, तब रागादिक दूरि होय।

यहां ऐसा कहै हैं कि—जैसैं विवाहादिक भी भवितव्य आधीन हैं, तैसैं तत्त्वविचारादिक भी कर्मका क्षयोपशमादिककै आधीन हैं, तातैं उद्यम करना निरर्थक है।

ताका उत्तर—ज्ञानावरणका तौ क्षयोपशम तत्त्वविचारादि करने योग्य तेरै भया है। याही तैं उपयोगकौं यहां लगावनेका उद्यम कराइए हैं। असज्ञी जीवनिकै क्षयोपशम नाहीं है, तौ उनकौं काहेकौं उपदेश दीजिए हैं।

बहुरि वह कहै है—होनहार होय, तौ तहां उपयोग लागै, बिना होनहार कसैं लागै?

ताका उत्तर—जो ऐसा श्रद्धान है, तौ सर्वत्र कोई ही कार्य का उद्यम मति करै। तू खान पान व्यापारादिकका तौ उद्यम करै, अर यहां होनहार बतावै। सो जानिए है, तेरा अनुराग यहां नाहीं। मानादिककरि ऐसी झूठी बातैं बनावै है। या प्रकार जे रागादिकहोतैं तिनिकरि रहित आत्माकौं मानैं हैं, ते मिथ्यादृष्टी जानने।

## [ बन्धका सद्भाव ]

बहुरि कर्म नोकर्मका सबध होतैं आत्माकौं निर्बंध मानैं, सो

प्रत्यक्ष इनिका बंधन देखिए है। ज्ञानावरणादिकतें ज्ञानादिकका घात देखिए है। शरीरकरि ताके अनुसारि अवस्था होती देखिए है। बंधन कैसें नाहीं। जो बंधन न होय, तौ मोक्षमार्गी इनके नाशका उद्यम काहेकौं करें।

यहां कोऊ कहै शास्त्रनिविषै आत्माकौं कर्म नोकर्मतें भिन्न अबद्ध स्पृष्ट कैसें कह्या है?

ताका उत्तर—संबंध अनेक प्रकार हैं। तहां तादात्म्यसंबंध अपेक्षा आत्माकौं कर्म नोकर्मतें भिन्न कह्या है। तहां द्रव्य पलटकरि एक नाहीं होय जाय हैं अर इस ही अपेक्षा अबद्धस्पृष्ट कहया है। बहुरि निमित्तनैमित्तिकसंबंध अपेक्षा बंधन है ही। उनके निमित्तकें आत्मा अनेक अवस्था धरै ही है। तातें सर्वथा निर्बंध आपकौं मानना मिथ्या दृष्टि है।

यहां कोऊ कहै—हमकौं तो बंध मुक्तिका विकल्प करना नाहीं, जातें शास्त्रविषै ऐसा कह्या है—

"जो बंधउ मुक्क मुणइ, सो बंधइ णिभंतु।"

याका अर्थ जो जीव बंध्या अर मुक्त भया मानै है, सो निःसंदेह बंधै है ताकौं कहिए है—

जे जीव केवल पर्यायदृष्टि होय, बंधमुक्त अवस्थाहीकौं मानै हैं, द्रव्य स्वभावका ग्रहण नाहीं करै हैं, तिनकौं ऐसा उपदेश दिया है, जो द्रव्यस्वभावकौं न जानता जीव बंध्या मुक्त भया

मानैं, सो बंध है। बहुरि जो सर्वथा ही बंधमुक्ति न होय, तौ भी जीव बंधै है, ऐसा काहेकौं कहै। अर बंधके नाशका मुक्त होनेका उद्यम काहेको करिए है। काहेकौं आत्मानुभव करिये है। तातैं द्रव्यदृष्टि करि एकदशा है। पर्यायदृष्टिकरि अनेक अवस्था हो है, ऐसा मानना योग्य है। ऐसैं ही अनेक प्रकारकरि केवल निश्चयनयका अभिप्रायतैं विरुद्ध श्रद्धानादिक करै है। जिनवानीविषैं तौ नाना नयअपेक्षा कहीं कैसा कहीं कैसा निरूपण किया है। यह अपने अभिप्रायतैं निश्चयनयकी मुख्यताकरि जो कथन किया होय, ताही कोग्रहिकरि मिथ्यादृष्टिकौंधारै है। बहुरि जिनवानीविषैं तौ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता भए मोक्षमार्ग कह्या है। सो याकै सम्यग्दर्शन ज्ञानविषैं सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान वा जानना भया चाहिए। सो तिनका विचार नाहीं। अर चारित्रविषैं रागादिक दूरि किया चाहिए, ताका उद्यम नाहीं। एक अपने आत्माकौं शुद्ध अनुभवना इसहीको मोक्षमार्ग जानि सतुष्ट भया है। ताका अभ्यास करनेकौं अतरङ्गविषै ऐसा चितवन किया चाहै है मैं सिद्धसमान हौं, केवलज्ञानादि सहित हौं, द्रव्यकर्म नोकर्म रहित हौं, परमानदमय हौं, जन्ममरणादि दुःख मेरे नाहीं, इत्यादि चितवन करै है। सो यहां पूछिए है —यहु चितवन जो द्रव्यदृष्टिकरि करो हौ, तौ द्रव्य तौ शुद्ध अशुद्ध सर्वपर्यायनिका समुदाय है। तुम शुद्ध ही अनुभव काहेकौं करो हौ। अर पर्यायदृष्टिकरि करो हौ, तौ तुम्हारै तौ वर्त्तमान

अशुद्धपर्याय है। तुम आपको शुद्ध कैसे मानो हो? बहुरि जो शक्तिअपेक्षा शुद्ध मानो हो, तो मैं ऐसा होने योग्य हों ऐसा मानौ। ऐसे काहेको मानौ हो। तातैं आपको शुद्धरूप चिंतवन करना भ्रम है। काहेतैं तुम आपको सिद्धसमान मान्या, तो यहु संसार अवस्था कौनके है। अर तुम्हारे केवलज्ञानादिक हैं, तो ये मतिज्ञानादिक कौनके हैं। अर द्रव्यकर्म नोकर्मरहित हो, तो ज्ञानादिककी व्यक्तता क्यों नहीं? परमानन्दमय हो, तो अब कर्त्तव्य कहा रह्या? जन्ममरणादि दुःख ही नाहीं, तौ दुखी कैसे होत हो? तातैं अन्य अवस्थाविषैं अन्यअवस्था मानना भ्रम है।

## [ द्रव्य दृष्टिसे शुद्धताका वर्णन ]

यहां कोऊ कहै शास्त्रनिविषै शुद्ध चिंतवन करनेका उपदेश कैसे दिया है।

ताका उत्तर - एक तौ द्रव्यअपेक्षा शुद्धपना है, एक पर्याय-अपेक्षा शुद्धपना है। तहां द्रव्यअपेक्षा तौ परद्रव्यतैं भिन्नपनौ वा अपने भावनितैं अभिन्नपनौ ताका नाम शुद्धपना है। अर पर्याय अपेक्षा औपाधिकभावनिका अभाव होना, ताका नाम शुद्धपना है। सो शुद्धचिंतवनविषै द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना ग्रहण किया है। सोई समयसारव्याख्याविषै कह्या है

एष एवाशेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपा स्यमान शुद्ध इत्यभिलप्यते ।

[ गाथा ० ६ ]

याका अर्थ जो आत्मा प्रमत्त अप्रमत्त नाहीं है। सो यहु ही समस्त परद्रव्यनिके भावनितें भिन्नपनेकरि सेया हुआ शुद्ध ऐसा कहिए है। बहुरि तहां ही ऐसा कह्या है।

समस्तकारकचक्रप्रक्रियोत्तीर्णनिर्मलानुभूति-मात्रत्वाच्छुद्ध ।

[ गाथा ७३ ]

याका अर्थ - समस्त ही कर्ता कर्म आदि कारकनिका समूहकी प्रक्रियात पारगत ऐसी जो निर्मल अनुभूति जो अभेद-ज्ञान तन्मात्र है, तात शुद्ध है। तातैं ऐसैं शुद्ध शब्दका अर्थ जानना। बहुरि ऐसैं ही केवलशब्दका अर्थ जानना। जो पर भावतैं भिन्न निःकेवल आप ही ताका नाम केवल है। ऐसैं ही अन्य यथार्थ अर्थ अवधारना। पर्याय अपेक्षा शुद्धपनों मानै, वा केवली आपकौ मानैं महाविपरीति होय। तातैं आपकौं द्रव्यपर्यायरूप अवलोकना। द्रव्यकरि सामान्यस्वरूप अवलोकना, पर्यायकरि विशेष अवधारना। ऐसैं ही चितवन किए सम्यग्दृष्टी

१ आत्मख्यातौ तु 'सकल' इति पाठ प्रतिभाति।

अशुद्धपर्याय है। तुम आपाकौं शुद्ध कैसें मानो हो? बहुरि जो शक्तिअपेक्षा शुद्ध मानो हो, तौ मैं ऐसा होने योग्य हौ ऐसा मानौं। एसे काहेकौ मानो हौ। तातें आपकौ शुद्धरुप चितवन करना भ्रम है। काहेतें तुम आपकौं सिद्धसमान मान्या, तौ यहु ससार अवस्था कौनके है। अर तुम्हारे केवलज्ञानादिक हैं, तौ ये मतिज्ञानादिक कौनके है। अर द्रव्यकर्म नोकर्मरहित हौ, तौ ज्ञानादिककी व्यक्तता क्यों नही? परमानन्दमय हो, तौ अब कर्त्तव्य कहा रहा? जन्ममरणादि दुःख हो नाहीं, तौ दुखी कैसे होत हौ? तातें अन्य अवस्थाविषै अन्यअवस्था मानना भ्रम है।

## [ द्रव्य दृष्टिसे शुद्धताका वर्णन ]

यहा कोऊ कहै शास्त्रविषै शुद्ध चितवन करनेका उपदेश कैंसे दिया है।

ताका उत्तर एक तौ द्रव्यअपेक्षा शुद्धपना है, एक पर्याय-अपेक्षा शुद्धपना है। तहा द्रव्यअपेक्षा तौ परद्रव्यतै भिन्नपनौ वा अपने भावनितै अभिन्नपनौ ताका नाम शुद्धपना है। अर पर्याय अपेक्षा औपाधिकभावनिका अभाव होना, ताका नाम शुद्धपना है। सो शुद्धचितवनविषैं द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना ग्रहण किया है। सोई समयसार-व्याख्याविषैं कह्या है

एष एवाशेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपास्यमान शुद्ध इत्यभिलप्यते ।

[ गाथा ० ६ ]

याका अर्थ - जो आत्मा प्रमत्त अप्रमत्त नाहीं है । सो यहु ही समस्त परद्रव्यनिके भावनितैं भिन्नपनेकरि सेया हुआ शुद्ध ऐसा कहिए है । बहुरि तहां ही ऐसा कह्या है ।

समस्तकारकचक्रप्रक्रियोत्तीर्णनिर्मलानुभूतिमात्रत्वाच्छुद्ध ।

[ गाथा ७३ ]

याका अर्थ - समस्त ही कर्ता कर्म आदि कारकनिका समूहकी प्रक्रियातै पारगत ऐसी जो निर्मल अनुभूति जो अभेदज्ञान तन्मात्र है, तातैं शुद्ध है। तातैं ऐसें शुद्ध शब्दका अर्थ जानना । बहुरि ऐसें ही केवलशब्दका अर्थ जानना । जो पर भावतैं भिन्न नि केवल आप ही ताका नाम केवल है । ऐसें ही अन्य यथार्थ अर्थ अवधारना । पर्याय अपेक्षा शुद्धपनौं मानै, वा केवली आपकौ मानै महाविपरीति होय । तातैं आपकौ द्रव्यपर्यायरूप अवलोकना । द्रव्यकरि सामा यस्वरूप अवलोकना पर्यायकरि विशेष अवधारना । ऐसें ही चितवन किए सम्यग्दृष्टि

१ आत्मख्यातौ तु 'शुद्ध' इति पाठ प्रतिभाति ।

हो है। जातैं सांचा अवलोके बिना सम्यग्दृष्टी कैसैं नाम पावै। बहुरि मोक्षमार्गविषैं तौ रागादिक मेटनेका श्रद्धान ज्ञान आचरण करना है। सो तौ विचार ही नाहीं। आपका शुद्ध अनुभवनतैं ही आपकौ सम्यग्दृष्टी मानि अन्य सर्व साधननिका निषेध करै है।

## [शास्त्राभ्यासको निरर्थकताका प्रतिषेध]

शास्त्रअभ्यासकरना निरर्थक बतावै हैं, द्रव्यादिकका वा गुणस्थान मार्गणा त्रिलोकादिका विचारकौं विकल्प ठहरावै हैं, तपश्चरण करना वृथा क्लेश करना मानै हैं, व्रतादिकका धारना बंधनमैं परना ठहरावै है, पूजनादि कार्यनिकौं शुभास्रव जानि हेय प्ररूपै है, इत्यादि सर्व साधनिकौं उठाय प्रमादी होय परिणमै है। सो शास्त्राभ्यास निरर्थक होय, तौ मुनिनकै भी तौ ध्यान अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य हैं। ध्यानविषैं उपयोग न लागै, तब अध्ययनहीविषैं उपयोगकूं लगावै है, अन्य ठिकाना बीचमैं उपयोग लगावने योग्य है नाहीं। बहुरि शास्त्रकरि तत्वनिका विशेष जाननेतैं सम्यग्दर्शन ज्ञान निर्मल होय है। बहुरि तहां यावत् उपयोग रहै, तावत् कषाय मंद रहै। बहुरि आगामी वीतरागभावनिकी वृद्धि होय। ऐसे कार्यकौं निरर्थक कैसे मानिए?

बहुरि वह कहै जो जिनशास्त्रनिविषैं अध्यात्मउपदेश है,

तिनिका अभ्यास करना, अन्य शास्त्रनिका अभ्यासकरि किछू सिद्धि नाही।

ताकौं कहिए है- जो तेरे सांची दृष्टि भई है, तौ सर्वही जैनशास्त्रकार्यकारी हैं। तहा भी मुख्यपनै अध्यात्मशास्त्रनिविषै तौ आत्मस्वरूपका मुख्य कथन है सो सम्यग्दृष्टी भए आत्मस्वरूपका तौ निर्णय होय चुके,तब तौ ज्ञानकी निर्मलताकै अर्थि वा उपयोगकौं मंद कषायरूप राखनेकै अर्थि अन्य शास्त्रनिका अभ्यास मुख्य चाहिए। अर आत्मस्वरूपका निर्णय भया है, ताका स्पष्ट राखनेकै अर्थि अध्यात्मशास्त्रनिका भी अभ्यास चाहिए। परन्तु अन्यशास्त्रनिविषै अरुचि तौ न चाहिए। जाकै अन्यशास्त्रनिकै अरुचिहै, ताकै अध्यात्मकी रुचि सांची नाहीं। जैसैं जाकै विषयासक्तपना होय, सो विषयासक्त पुरुषनिकी कथा भी रुचितैं सुनै, वा विषयके विशेषकौं भी जानै, वा विषयका आचरनविषै जो साधन होय, ताकौ भी हितरूप जानै, वा विषय का स्वरूपकौं भी पहिचानै, तैसैं जाकै आत्मरुचि भई होय, सो आत्मरुचिके धारक तीर्थंकरादिक तिनका पुराण भी जानैं, बहुरि आत्माके विशेष जाननेकौं गुणस्थानादिककौं भी जानैं, बहुरि आत्मआचरणविषै जे व्रतादिक साधन हैं, तिनकौं भी हितरूप मानैं, बहुरि आत्माकेस्वरूपका भी पहिचानैं। तातैं च्यार याही अनुयोग कार्यकारी हैं। बहुरि तिनिका नीका ज्ञान होनेकै अर्थि शब्दन्यायशास्त्रादिकका भी जानना चाहिए। सो

अपनी शक्तिके अनुसारि सबनिका थोरा वा बहुत अभ्यास करना योग्य है।

## [ बुद्धिकी निर्मलता आत्मस्वरूपकी स्थिरता में है ]

बहुरि वह कहै है, 'पद्मनदिपचीसी' विषै ऐसा कहा है—जो आत्मस्वरूपतै निकसि बाह्य शास्त्रनिविषै बुद्धि विचरै है, सो वह बुद्धि व्यभिचारिणी है।

ताका उत्तर—यहु सत्य कहा है। बुद्धि तौ आत्माकी है, ताकौ छोरि परद्रव्य शास्त्रनिविषै अनुरागिणी भई, ताकौ व्यभिचारिणी ही कहिए। परन्तु जैसें स्त्री शीलवती रहै, तौ योग्य ही है। अर न रह्या जाय, तौ उत्तमपुरुषकौ छोरि चांडाला दिकका सेवन किए तौ अत्यन्त निंदनीक होइ। तैसें बुद्धि आत्मस्वरूपविषै प्रवर्तै, तौ योग्य ही है। अर न रह्या जाय, तौ प्रशस्त शास्त्रादि परद्रव्यकौ छोरि अप्रशस्त विषयादिविषै लगै तौ महानिंदनीक ही होइ। सो मुनिनिकै भी स्वरूपविषै बहुत काल बुद्धि रहै नाहीं, तौ तेरी कैसें रह्या करै? तातैं शास्त्राभ्यासविषै बुद्धि लगावना युक्त है। बहुरि जो द्रव्यादिकका वा गुणस्थाना दिकका विचारकौ विकल्प ठहरावै है, सो विकल्प तौ है, परन्तु निर्विकल्प उपयोग न रहै, तब इनि विकल्पनिकौ न करै तौ अन्य विकल्प होइ, ते बहुत रागादिगर्भित हो हैं। बहुरि निर्विकल्प दशा सदा रहै नाहीं। जातैं छद्मस्थका उपयोग एकरूप उत्कृष्ट रहै, तौ अंतर्मुहूर्त रहै। बहुरि तू कहैगा—मैं आत्म-

स्वरूपहीका चिंतवन अनेक प्रकार किया करूंगा, सो सामान्य चिंतनविषैं तौ अनेकप्रकार बनै नाहीं। अर विशेष करेंगा, तब द्रव्य गुण पर्याय गुणस्थान मार्गणा शुद्ध अशुद्ध अवस्था इत्यादि विचार होयगा।

## [ रत्नत्रयकी पूर्णता ही मोक्षका मार्ग है ]

बहुरि मुनि, केवल आत्मज्ञानहीतें तौ मोक्षमार्ग होइ नाहीं। सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञान भए, वा रागादिक दूरि किए मोक्ष-मार्ग होगा। सो सप्ततत्त्वनिका विशेष जाननेकौं जीव अजीवके विशेष वा कर्मके आस्रव बंधादिकका विशेष अवश्य जानना योग्य है, जातैं सम्यग्दर्शन ज्ञानकी प्राप्ति होय। बहुरि तहां पीछे रागादिक दूरि करने सो जे रागादिक बधावनेके कारण तिनकौं छोडि जे रागादिक घटावनेके कारण होंय तहां उपयोगकौं लगावना सो द्रव्यादिका गुणस्थानादिकका विचार रागादिक घटावनेकौं कारण है। इनविषै कोई रागादिकका निमित्त नाहीं, तातैं सम्यग्दृष्टी भए पीछे भी इहां ही उपयोग लगावना।

बहुरि वह कहै है - रागादि मिटावनेकौं कारण होय तिन विषैं तौ उपयोग लगावना, परन्तु त्रिलोकवर्ती जीवनिकी गति आदि विचार करना, वा कर्मका बंध उदयसत्वादिकका घणा विशेष जानना, वा त्रिलोकका आकार प्रमाणादिक जानना इत्यादि विचार कौन कार्यकारी है।

ताका उत्तर—इनकौं भी विचारतें रागादिक बधते नाहीं। जातें ए ज्ञेय याकै इष्ट अनिष्टरूप हैं नाहीं। तातैं वर्तमान रागादिककौं कारण नाहीं। बहुरि इनकौं विशेष जानें तत्त्वज्ञान निर्मल होय, तातें आगामी रागादिक घटावनेकौं ही कारण है। तातें कार्यकारी हैं।

बहुरि वह कहै है—स्वर्ग नरकादिककौं जानें तहां रागद्वेष हो है।

ताका समाधान—ज्ञानीकैं तो ऐसी बुद्धि होइ नाहीं, अज्ञानीकैं होय। तहां पाप छोरि पुण्यकार्यविषै लागै तहां किछू रागादिक घटै ही है।

बहुरि वह कहैहै—शास्त्रविषैं ऐसा उपदेश है, प्रयोजनभूत थोरा ही जानना कार्यकारी है। तातैं बहुत विकल्प काहेको कीजिए।

ताका उत्तर—जे जीव अन्य बहुत जानैं, अर प्रयोजनभूतकौं न जानैं, अथवा जिनकी बहुत जानने की शक्ति नाहीं, तिनकौं यहु उपदेश दिया है। बहुरि जिनकैं बहुत जानने की शक्ति होय, ताकौं तौ यहु कह्या नाहीं जो बहुत जाने बुरा होगा। जेता बहुत जानैगा, तितना प्रयोजनभूत जानना निर्मल होगा। जातैं ऐसा कह्या है—

[सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्]

याका अर्थ यहु—सामान्य शास्त्रतैं विशेष बलवान् है। विशेषहीतैं नीकै निर्णय हो है। तातैं विशेष जानना योग्य है। बहुरि वह तपश्चरणकौं वृथा क्लेश ठहरावै है। सो मोक्षमार्ग भए तौ संसारी जीवनितैं उलटी परणति चाहिए। संसारीनिकैं इष्ट अनिष्ट सामग्रीतैं रागद्वेष हो हैं याकै रागद्वेष न चाहिए। तहां राग छोडनेकै अर्थि इष्ट सामग्री भोजनादिकका त्यागी हो है। अर द्वेष छोडनेकै अर्थि अनिष्ट अनशनादिककौं अंगीकार करै है। स्वाधीनपनै ऐसा साधन होय तौ पराधीन इष्ट अनिष्ट सामग्री मिलैं भी राग द्वेष न होय। सो चाहिए तौ ऐसें अर तेरै अनशनादिकतैं द्वेष भया। तातैं ताकौ क्लेश ठहराय। जब यहु क्लेश भया, तब भोजन करना सुख स्वयमेव ठहरया। तहां राग आया, तौ ऐसी परिणति तौ संसारीनिकै पाईए ही है। तैं मोक्षमार्गी होय, कहा किया।

बहुरि जो तू कहैगा, केई सम्यग्दृष्टी भी तपश्चरण नाहीं करै हैं।

ताका उत्तर—यहु कारणविशेषतैं तप न होय सकै है। परन्तु श्रद्धानविषैं तौ तपकौं भला जानैं है। ताके साधनका उद्यम राखै है। तेरै तौ श्रद्धान यहु है तप करना क्लेश है। बहुरि तपका तेरै उद्यम नाहीं। तातैं तेरै सम्यग्दृष्टि कैसैं होय?

ताका उत्तर—इनकौं भी विचारतैं रागादिक बधते नाहीं। जातैं ए इष्ट अनिष्टरूप हैं नाहीं। तातैं वर्तमान रागादिककौं कारण नाहीं। बहुरि इनकौं विशेष जानैं तत्त्वज्ञान निर्मल होय, तातै आगामी रागादिक घटावनेकौं ही कारण है। तातैं कार्यकारी हैं।

बहुरि वह कहै है—स्वर्ग नरकादिककौं जानैं तहां रागद्वेष हो है।

ताका समाधान—ज्ञानीकै तौ ऐसी बुद्धि होइ नाहीं, अज्ञानीकै होय। तहां पाप छोरि पुण्यकार्यविषैं लागैं तहां किछू रागादिक घटै ही है।

बहुरि वह कहैहै—शास्त्रविषैं ऐसा उपदेश है, प्रयोजनभूत थोरा ही जानना कार्यकारी है। तातैं बहुत विकल्प काहेकौ कीजिए।

ताका उत्तर—जे जीव अन्य बहुत जानैं, अर प्रयोजनभूतकौं न जानैं, अथवा जिनकी बहुत जानने की शक्ति नाहीं, तिनकौं यहु उपदेश दिया है। बहुरि जिनकैं बहुत जानने की शक्ति होय, ताकौं तौ यहु कह्या नाहीं जो बहुत जाने बुरा होगा। जेता बहुत जानैगा, तितना प्रयोजनभूत जानना निर्मल होगा। जातैं शास्त्रविषैं ऐसा कह्या है—

## [सामान्यशास्त्रतो नून विशेषो बलवान् भवेत्]

याका अर्थ यहु—सामान्य शास्त्रतैं विशेष बलवान् है। विशेषहीतैं नीकै निर्णय हो है। तातैं विशेष जानना योग्य है। बहुरि वह तपश्चरणकों वृथा क्लेश ठहरावै है। सो मोक्षमार्ग भए तौ संसारी जीवनितैं उलटी परणति चाहिए। संसारीनिकै इष्ट अनिष्ट सामग्रीतैं रागद्वेष हो है याकै रागद्वेष न चाहिए। तहां राग छोडनेकै अर्थि इष्ट सामग्री भोजनादिकका त्यागी हो है। अर द्वेष छोडनेकै अर्थि अनिष्ट अनशनादिककौं अंगीकार करै है। स्वाधीनपनै ऐसा साधन होय तौ पराधीन इष्ट अनिष्ट सामग्री मिलै भी राग द्वेष न होय। सो चाहिए तो ऐसें अर तेरै अनशनादिकतैं द्वेष भया। तातैं ताकौं क्लेश ठहराय। जब यहु क्लेश भया, तब भोजन करना सुख स्वयमेव ठहरया। तहां राग आया, तो ऐसी परिणति तौ संसारीनिकै पाईए ही है। तैं मोक्षमार्गी होय, कहा किया।

बहुरि जो तू कहैगा, केई सम्यग्दृष्टी भी तपश्चरण नाहीं करै है।

ताका उत्तर—यहु कारणविशेषतैं तप न होय सकै है। परन्तु श्रद्धानविषैं तौ तपकौं भला जानै है। ताके साधनका उद्यम राखै है। तेरै तो श्रद्धान यहु है तप करना क्लेश है। बहुरि तपका तेरै उद्यम नाहीं। तातैं तेरै सम्यग्दृष्टि कैसैं होय?

बहुरि वह कहै है—शास्त्रविषै ऐसा कह्या है, तप आदिका क्लेश करै है, तौ करौ ज्ञानबिना सिद्धि नाहीं।

ताका उत्तर—यहु जे जीव तत्त्वज्ञानतैं तौ पराङ्मुख हैं तप हीतैं मोक्ष मानैं हैं, तिनकौं ऐसा उपदेश दिया है। तत्त्वज्ञानबिना केवल तपहीतैं मोक्षमार्ग न होय। बहुरि तत्त्वज्ञान भए रागादिक मेटनेकै अर्थि तपकरनेका तौ निषेध है नाहीं। जो निषेध होय तौ गणधरादिक तप काहेकौं करैं। तातैं अपनी शक्तिअनुसारि तप करना योग्य है। बहुरि वह व्रतादिककौं बंधन मानैं है। सो स्वच्छन्दवृत्ति तौ अज्ञानअवस्थाहीविषै थी। ज्ञान पाए तौ परिणतिकौ रोकै हीहै। बहुरि तिस परिणति रोकनेकैं अर्थि बाह्य हिंसादिक कारणनिका त्यागी भया चाहिए।

बहुरि वह कहै है—हमारैं परिणाम तौ शुद्ध हैं बाह्य त्याग न किया तौ न किया।

ताका उत्तर—जे ए हिंसादिकार्य तेरे परिणाम बिना स्वयमेव होते होय, तौ हम ऐसैं मानैं। बहुरि तू जो अपना परिणामकरि कार्य करै, तहां तेरे परिणाम शुद्ध कैसैं कहिए। विषयसेवनादि क्रिया वा प्रमादगमनादि क्रिया परिणामबिना कैसैं होय। सो क्रिया तौ आप उद्यमी होय तू करै, अर तहां हिंसादिक होय ताकौं तू गिनै नाहीं, परिणाम शुद्ध मानै। सो ऐसी मानितैं तेरे परिणाम अशुद्ध ही रहैंगे।

## [ प्रतिज्ञाकी उपादेयताका वर्णन ]

बहुरि यह कहै है—परिणामनिकौं रोकै व बाह्य हिंसादिक भी घटाईए। परन्तु प्रतिज्ञा करनेमैं बंधन हो है, तातैं प्रतिज्ञा रूप व्रत नाहीं अंगीकार करना।

ताका समाधान—जिस कार्य करनेकी आशा रहै है, ताकी प्रतिज्ञा न लीजिए है। अर आशा रहै तिसतैं राग रहै है। तिस रागभावतैं बिना कार्य किए भी अविरतितैं कर्मका बंध हुवा करै। तातैं प्रतिज्ञा अवश्य करनी युक्त है। बहुरि कार्य करनेका बंधन भए बिना परिणाम कैसैं रुकैंगे। प्रयोजन पड़ै तद्रूप परिणाम होय ही होय वा बिना प्रयोजन पड़ैं भी ताकी आशा रहै। तातैं प्रतिज्ञा करनी युक्त है।

बहुरि यह कहै है—न जानिए कैसा उदय आवै, पीछैं प्रतिज्ञाभंग होय, तौ महापाप लागै। तातैं प्रारब्ध अनुसारि कार्य बनै, सो बनौ, प्रतिज्ञाका विकल्प न करना।

ताका समाधान—प्रतिज्ञा ग्रहण करतैं जाका निर्वाह होता न जानैं, तिस प्रतिज्ञाकौं तौ करै नाहीं। प्रतिज्ञा लेतैं ही यहु अभिप्राय रहै, प्रयोजन पड़ै छोड़ि द्यौंगा, तौ वह प्रतिज्ञा कौन कार्यकारी भई। अर प्रतिज्ञा ग्रहण करतैं तौ यहु परिणाम है, मरणांत भए भी न छोड़ौंगा तौ ऐसी प्रतिज्ञा करनी युक्त ही है। बिना प्रतिज्ञा किए अविरत संबंधी बंध मिटै नाहीं

आगामी उदयकाभयकरि प्रतिज्ञा न लीजिए सो उदयकौं विचारैं मरैं ही कर्त्तव्यका नाश होय। जैसैं आपकौं पचाता जान जितना, तितना भोजन करै। कदाचित् काहूकै भोजनतैं अजीर्ण भया होय, तौ तिस भयतैं भोजन करना छाडै तौ मरण ही होय। तैसैं आपकै निवाह होता जान, तितनी प्रतिज्ञा करै। कदाचित् काहूकै प्रतिज्ञातैं भ्रष्टपना भया होय, तौ तिस भयतैं प्रतिज्ञा करनी छाडै तौ असंयम ही होय। तातैं बनै सो प्रतिज्ञा लेनी युक्त है। बहुरि प्रारब्ध अनुसारि तो कार्य बनै ही है, तू उद्यमी होय भोजनादि काहेकौं करै है। जो तहां उद्यम करै है, तौ त्याग करनेका भी उद्यम करना युक्त ही है। जब प्रतिमावत् तेरी दशा होय जायगी, तब हम प्रारब्ध ही मानेंगे तेरा कर्त्तव्य न मानेंगे। तातैं काहेकौं स्वच्छंद होनेकी युक्ति बनावै है। बनै सो प्रतिज्ञा करि व्रत धारना योग्य ही है।

## [ शुभोपयोग सर्वथा हेय नहीं है ]

बहुरि यह पूजनादि कार्यकौं शुभास्रव जानि हेय मानै है। सो यहु सत्य है। परन्तु जो इनि कार्यनिकौं छोरि शुद्धोपयोग-रूप होय तौ भलै ही है। अर विषय कषायरूप अशुभरूप प्रवर्त्तै, तौ अपना बुरा ही किया। शुभोपयोगतैं स्वर्गादि होय वा भली वासनातैं वा भला निमित्ततैं कर्मका स्थिति अनुभाग घटि जाय, तौ सम्यक्त्वादिककी भी प्राप्ति हो जाय। बहुरि अशुभोपयोगतैं

नरक निगोदादि होय, वा बुरी वासनातैं वा बुरा निमित्ततैं कर्मका स्थिति अनुभाग बध जाय, तौ सम्यक्तादिक महा दुर्लभ होय जांय। बहुरि शुभोपयोगहोतैं कषाय मंद हो है। अशुभोपयोगहोतैं तीव्र हो है। सो मंदकषायका कारण छोरि तीव्र कषायका कार्य करना तौ ऐसा है, जैसैं कडवी वस्तु न खानी अर विष खाना। सो यहु अज्ञानता है।

बहुरि वह कहै हैं—शास्त्रविषै शुभ अशुभकौं समान कह्या है, तातैं हमकौं तौ विशेष जानना युक्त नाहीं।

ताका समाधान—जे जीव शुभोपयोगकौं मोक्षका कारण मानि उपादेय मानैं हैं, शुद्धोपयोगकौं नाहीं पहिचानैं हैं, तिनिकौं शुभ अशुभ दोऊनिकौं अशुद्धताकी अपेक्षा वा बंधकारणकी अपेक्षा समान दिखाए हैं बहुरि शुभ अशुभनिका परस्पर विचार कीजिए, तौ शुभभावनिविषै कषायमंद हो है, तातैं बंध हीन हो है। अशुभभावनिविषै कषायतीव्र हो है, तातैं बंध बहुत हो है। ऐसैं विचार किए अशुभकी अपेक्षा सिद्धांतविषै शुभकौं भला भी कहिए है। जैसैं रोग तौ थोरा वा बहुत बुरा ही है। परन्तु बहुत रोगकी अपेक्षा थोरा रोगको भला भी कहिए। तातैं शुद्धोपयोग नाहीं होय, तब अशुभतैं छूटि शुभविषै प्रवर्त्तना-युक्त है। शुभकौं छोरि अशुभविषै प्रवर्त्तना युक्त नाहीं।

बहुरि वह कहै है—जो कामादिक वा क्षुधादिक मिटावनेकौं अशुभरूप प्रवृत्ति तौ भए बिना रहती नाहीं, अर शुभप्रवृत्ति

चाहिकरि करनीयो है। ज्ञानीकै चाहि चाहिए नाहीं। तातैं शुभका उद्यम नाहीं करना।

ताका उत्तर—शुभप्रवृत्तिविषैं उपयोग लागनेकरि वा ताकै निमित्ततैं विरागता बधनेंकरि कामादिक हीन हो हैं। अर क्षुधादिकविषैं भी सक्लेश थोरा हो है। तातैं शुभोपयोगका अभ्यास करना। उद्यम किए भी जो कामादिक वा क्षुधादिक पीडै हैं तौ ताकै अर्थि जैसे थोरा पाप लागै, सो करना। बहुरि शुभोपयोगकौं छोडि निःशंक पापरूप प्रवर्त्तना तौ युक्त नाहीं। बहुरि तू कहै है—ज्ञानीकै चाहि नाहीं अर शुभोपयोग चाहि किए हो है सो जैसे पुरुष किंचिन्मात्र भी अपना धन दिया चाहै नाहीं, परन्तु जहां बहुत द्रव्य जाता जानै, तहां चाहिकरि स्तोक द्रव्य देनेका उपाय करै है। तैसे ज्ञानी किंचिन्मात्र भी कषायरूप कार्य किया चाहै नाहीं। परन्तु जहां बहुत कषायरूप अशुभ कार्य होता जानै तहां चाहिकरि स्तोक कषायरूप शुभकार्य करनेका उद्यम करै है। ऐसैं यहु बात सिद्ध भई—जहां शुद्धोपयोग होता जानै, तहां तौ शुभकार्यका निषेध ही है अर जहां अशुभोपयोग होता जानै, तहां शुभकौं उपायकरि अंगीकार करना युक्त है। या प्रकार अनेक व्यवहारकार्यकौं उथापि स्वच्छंदपनाकौं स्थापै है, ताका निषेध किया।

## [ केवलनिश्चयावलम्बी जीवकी प्रवृत्ति ]

अब तिस ही केवल निश्चयावलम्बी जीवकी प्रवृत्ति दिखाइए हैं—

एक शुद्धात्माकौं जानें ज्ञानी हो है—अन्य किछू चाहिए नाहीं, ऐसा जानि कबहू एकांत तिष्ठकरि ध्यानमुद्रा धारि मैं सर्वकर्मउपाधिरहित सिद्धसमान आत्मा हौं, इत्यादि विचारकरि सतुष्ट हो है। सो ए विशेषण कैसें सभवै हैं। ऐसा विचार नाहीं। अथवा अचल अखंड अनौपम्यादि विशेषण करि आत्माकौं ध्यावै हैं, सो ए विशेषण अन्य द्रव्यनिविषै भी सभवै हैं। बहुरि ए विशेषण किस अपेक्षा है, सो विचार नाहीं। बहुरि कदाचित् सूता बैठ्या जिस तिस अवस्थाविषै ऐसा विचार राखि आपकौं ज्ञानी मानैं है। बहुरि ज्ञानीकै आस्रव बध नाहीं, ऐसा आगमविषै कह्या है। तातै कदाचित् विषयकषायरूप हो है। तहां बध होनेंका भय नाहीं है। स्वच्छंद भया रागादिरूप प्रवर्त्तै है। सो आपा परकौं जाननेका तौ चिन्ह वैराग्यभाव है, सो समयसारविषै कह्या है—

"सम्यग्दृष्टेर्भवति नियत ज्ञानवैराग्यशक्ति[1]।"

याका अर्थ—यहु सम्यग्दृष्टीकै निश्चयसौं ज्ञानवैराग्यशक्ति होय। बहुरि कह्या है—

सम्यग्दृष्टि स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्या—
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोप्याचरन्तु।

---

१ सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्ति-, स्व वस्तुत्व कलयितुमय स्वान्य रूपाप्तिमुक्त्या। यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिद तत्त्वत स्व पर च, स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात ॥ निर्जरा० ४ कलश ॥

**आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापा**
**आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्व शून्या *॥५॥**

याका अर्थ—स्वयमेव यहु मैं सम्यग्दृष्टी हौं, मेरे कदाचित् बंध नाहीं, ऐसैं ऊंचा फुलाया है मुख जिननैं ऐसे रागी वैराग्य शक्ति रहित भी आचरण करै हैं, तौ करौ, बहुरि पंचसमितिकी सावधानीकौं अवलंबैं हैं, तौ अवलंबौ, जातैं वैराग्यज्ञानशक्ति बिना अजहू पापी ही हैं। ए दोऊ आत्मा अनात्माका ज्ञानरहितपनातैं सम्यक्त्वरहित ही हैं।

बहुरि पूछिए है—परकौं पर जान्या, तौ परद्रव्यविषै रागादि करनेका कहा प्रयोजन रहा? तहां वह कहै है—मोहके उदयतैं रागादि हो हैं। पूर्वै भरतादिक ज्ञानी भए, तिनकैं भी विषय कषायरूप कार्य भया सुनिए है।

ताका उत्तर—ज्ञानीकै भी मोहके उदयतैं रागादिक हो हैं यहु सत्य, परन्तु बुद्धिपूर्वक रागादिक होते नाहीं। सो विशेष वर्णन आगैं करैंगे। बहुरि जाकै रागादि होनेका किछू विषाद नाहीं, तिनके नाशका उपाय नाहीं ताकैं रागादिक बुरे हैं ऐसा श्रद्धान भी नाहीं सम्भवै है। ऐसैं श्रद्धानबिना सम्यग्दृष्टी कैसैं होय? जीवाजीवादि तत्त्वनिके श्रद्धान करनेका प्रयोजन तौ इतना ही श्रद्धान है। बहुरि भरतादिक सम्यग्दृष्टीनिकै विषय कषाय-

---

* समयसार कलशा में 'शून्य' के स्थान पर रिक्ता पाठ है।

निकी प्रवृत्ति जैसैं हो है, सो भी विशेष आगैं कहैंगे। तू उनका उदाहरणकरि स्वच्छन्द होगा, तौ तेरे तीव्र आस्रव बंध होगा। सोई कह्या है—

**मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि यदि ते स्वच्छन्दमन्दोद्यमा।[१]**

याका अर्थ—जो ज्ञाननयका अवलोकनहार भी जे स्वच्छन्द मंद उद्यमी हो हैं, ते संसारविषै डूबै और भी तहां "ज्ञानिन कर्म न जातु कर्तुमुचित"—इत्यादि कलशाविषै वा "तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिन" इत्यादि कलशानिविषैं स्वच्छन्द होना निषेध्या है। बिना चाहि जो कार्य होय, सो कर्मबंधका कारण नाहीं। अभिप्रायतें कर्त्ता होय करै अर ज्ञाता रहै, यहु तौ बनै नाहीं, इत्यादि निरूपण किया है तातैं रागादिक बुरे अहितकारी जानि तिनका नाशके अर्थि उद्यम राखना। तहां अनुक्रमविषैं पहलै तीव्ररागादि छोड़नेकै अर्थि अशुभ कार्य छोरि शुभकार्यविषै लागना, पीछैं मंदरागादि भी छोडनेकै अर्थि शुभकौं भी छोरि शुद्धोपयोगरूप होना। बहुरि केई जीव अशुभविषै क्लेश मानि व्यापारादि कार्य वा स्त्रीसेवनादि कार्यनिकौं भी

---

१ मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति ये।
मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि यदि ते स्वच्छन्दमन्दोद्यमाः॥
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं।
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च॥

—नाटक समयसार।

घटावै हैं। बहुरि शुभकौं हेय जानि शास्त्राभ्यासादि कार्यनिविषैं नाहीं प्रवर्त्तैं हैं। वीतरागभावरूप शुद्धोपयोगकौं प्राप्त भए नाहीं, ते जीव अर्थ काम धर्म मोक्षरूप पुरुषार्थतैं रहित होतेसंते आलसी निरुद्यमी हो हैं। तिनकी निंदा पंचास्तिकायकी व्याख्याविषैं कीनी है। तिनकौं दृष्टान्त दिया है—जैसैं बहुत खीर खांड खाय पुरुष आलसी हो है, वा जैसैं वृक्ष निरुद्यमी है, तैसैं ते जीव आलसी निरुद्यमी भए हैं।

अर इनकौं पूछिए है—तुम बाह्य तौ शुभ अशुभ कार्यनिकौं घटाया, परन्तु उपयोग तौ आलंबनबिना रहता नाहीं, सो तुम्हारा उपयोग कहां रहै है, सो कहो। जो वह कहै—आत्माका चिंतवन करै हैं, तो शास्त्रादिकरि अनेक प्रकारका आत्माका विचारकौं तौ तुम विकल्प ठहराया अर कोई विशेषण आत्माका जाननेमैं बहुत काल लागै नाहीं, बारबार एकरूप चिंतवनविषैं छद्मस्थका उपयोग लगता नाहीं। गणधरादिकका भी उपयोग ऐसैं न रहि सकै, तातैं वै भी शास्त्रादि कार्यनिविषैं प्रवर्त्तैं हैं। तेरा उपयोग गणधरादिकतैं भी कैसैं शुद्ध भया मानिए। तातैं तेरा कहना प्रमाण नाहीं। जैसैं कोऊ व्यापारादिविषैं निरुद्यमी होय ठाला जैसैं तैसैं काल गमावै, तैसैं तू धर्मविषैं निरुद्यमी होइ प्रमादी यूं ही काल गमावै है। कबहूं किछू चिंतवनसा करै, कबहूं बातैं बनावै, कबहू भोजनादि करै, अपना उपयोग निर्मल करनेकौं शास्त्राभ्यास तपश्चरण भक्तिआदि कार्यनिविषैं प्रवर्त्तता

नाहीं। सरासा होय प्रमादी होनेका नाम शुद्धोपयोग ठहराय, तहा क्लेश थोरा होनेतैं जैसें कोई आलसी होय परया रहनैमैं सुख मानै, तैसें आनन्द मानै हैं। अथवा जैसें सुपनैविषैं आपकौं राजा मानि सुखी होय, तैसें आपकौं अमर्त सिद्ध समान शुद्ध मानि आप ही आनंदित हो है। अथवा जैसें कहीं रति मानि सुखी हो है, तैसें किछू विचार करनेविषैं रति मानि सुखी होय, ताकौं अनुभवजनित आनद कहै है। बहुरि जैस कहीं अरति मानि उदास होय, तैसें व्यापारिक पुत्रादिककौं खेदका कारण जानि तिनतैं उदास रहै है, ताकौं वैराग्य मानै है। सो ऐसा ज्ञान वैराग्य तो कषायगर्भित है। जो वीतरागरूप उदासीन दशाविषैं निराकुलता होय, सो साचा आनंद ज्ञान वैराग्य ज्ञानी जीवनिकै चारित्रमोहकी हीनता भए प्रगट हो है। बहुरि वह व्यापारादि क्लेश छोडि यथेष्ट भोजनादिककरि सुखी हूवा प्रवर्त्तै है। आपकौं तहां कषायरहित मानै है, सो ऐसें आनन्दरूप भए तौ रौद्रध्यान हो है। जहां सुखसामग्री छोडि दुखसामग्रीका सयोग भए सक्लेश न होय, रागद्वेष न उपजै, तहा निःकषाय-भाव हो हैं। ऐसें भ्रमरूप तिनकी प्रवृत्ति पाईए है। या प्रकार जे जीव केवल निश्चयाभासके अवलंबी हैं, ते मिथ्यादृष्टी जानने। जैसें वेदांती वा सांख्यमतवाले जीव केवल शुद्धात्माके श्रद्धानी हैं, तैसें ए भी जाननें। जातैं श्रद्धानकी समानताकरि उनका उपदेश इनकौं इष्ट लागै है, इनका उपदेश उनको इष्ट लागै है।

घटावे हैं। बहुरि शुभकौं हेय जानि शास्त्रा
नाहीं प्रवर्तें हैं। वीतरागभावरूप शुद्ध
नाहीं, ते जीव अर्थ काम धर्म मोक्षरूप
मतै आलसी निरुद्यमी हो हैं। तिनकी नि
व्याख्याविषै कीनी है। तिनकौं दृष्टान्त
खीर खांड खाय पुरुष आलसी हो है, वा
तैसैं ते जीव आलसी निरुद्यमी भए हैं।

अब इनकौं पूछिए है—तुम बाह्य
निकौं घटाया, परन्तु उपयोग तौ आलंब
तुम्हारा उपयोग कहा रहै है, सो कहौ।
चिंतवन करै है, तौ शास्त्रादिकरि अनेक
विचारनेंं तौ तुम विकल्प ठहराया अर
जाननेमें बहुत काल लागै नाहीं, बारबार
छद्मस्थका उपयोग लगता नाहीं। गणध
एैसे न रहि सके, तातैं वै भी शास्त्रादि
तेरा उपयोग गणधरादिकतें भी कैसे शु
तेरा कहना प्रमाण नाहीं। जैसें कोऊ
होय ठाला जैसें तैसें काल गमावै, तैसें
होइ प्रमादी यूं ही काल गमावै है। कबहू
कबहूं बातें बनावै, कबहू भोजनादि करै

तपश्चरण वि

चितवनतैं निर्जरा बंध नाहीं। रागादिकके घटे निर्जरा है, रागादिक भए बंध है। ताकौं रागादिकके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान नाहीं, तातैं अन्यथा मानै हैं।

## [ निर्विकल्प दशा विचार ]

तहां वह पूछै है कि ऐसे है तौ निर्विकल्प अनुभव दशाविषै नयप्रमाण निक्षेपादिकका वा दर्शन ज्ञानादिकका भी विकल्पकरनेका निषेध किया है, सो कैसे है ?

ताका उत्तर—जे जीव इनही विकल्पनिविषै लगि रहे हैं, अभेदरूप एक आपाकौं अनुभवै नाहीं हैं, तिनकौं ऐसा उपदेश दिया है, जो ए सर्वविकल्प वस्तुका निश्चयकरनेकौं कारन हैं। वस्तुका निश्चय भये इनका प्रयोजन किछू रहता नाहीं। तातैं इन विकल्पनिकौं भी छोडि अभेदरूप एक आत्माका अनुभव करना। इनके विचाररूप विकल्पनिही विषै फँसि रहना योग्य नाहीं। बहुरि वस्तुका निश्चय भए पीछैं ऐसा नाहीं, जो सामान्यरूप स्वद्रव्यहीका चितवन रह्या करै। स्वद्रव्यका वा परद्रव्यका सामान्यरूप वा विशेषरूप जानना होय, परन्तु वीतरागता लिए होय, तिसहीका नाम निर्विकल्प दशा है।

तहां वह पूछै है—यहां तौ बहुत विकल्प भए, निर्विकल्पसंज्ञा कैसैं संभवै ?

ताका उत्तर—निर्विचार होने का नाम निर्विकल्प नाहीं

## [ स्व द्रव्य पर-द्रव्य चिन्तन द्वारा निर्जरा, आस्रव और बंधका प्रतिषेध]

बहुरि तिन जीवनिकै ऐसा श्रद्धान है—जो केवल शुद्धात्माका चिंतवनतैं तौ संवर निर्जरा हो है, वा मुक्तात्माका सुखका अंश तहां प्रगट हो है। बहुरि जीवकै गुणस्थानादि अशुद्ध भावनिका वा आप बिना अन्य जीव पुद्गलादिकका चिंतवन किए आस्रव बंध हो है। तातैं अन्य विचारतैं पराङ्मुख रहै हैं। सो यहु भी सत्य श्रद्धान नाहीं, जातैं शुद्ध स्वद्रव्यका चिंतवन करौ, वा अन्य चिंतवन करौ। जो वीतरागता लिए भाव होय, तौ तहां संवर निर्जरा ही है। अर जहां रागादिरूप भाव, होय, तहां आस्रव बंध ही है। जो परद्रव्यके जाननेहीतैं आस्रव बंध होय तौ केवली तौ समस्त परद्रव्यकौं जानै हैं, तिनकै भी आस्रव बंध होय बहुरि वह कहै है—जो छद्मस्थकै परद्रव्य चिंतवन होतैं आस्रव बंध हो है। सो भी नाहीं, जातैं शुक्लध्यानविषैं भी मुनिनकै छहौं द्रव्यनिका द्रव्यगुणपर्यायनिका चिंतवन होना निरूपण किया है वा अवधिमनःपर्ययादिविषैं परद्रव्यके जाननेहीकी विशेषता हो है। बहुरि चौथा गुणस्थानविषैं कोई अपने स्वरूपका चिंतवन करै है, ताकै भी आस्रव बंध अधिक है, वा गुणश्रेणी निर्जरा नाहीं है। पंचम षष्ठ गुणस्थानविषैं आहार विहारादि क्रिया होतैं परद्रव्य चिंतवनतैं भी आस्रव बंध थोरा हो है वा गुणश्रेणी निर्जरा हुवा करै है। तातैं स्वद्रव्य परद्रव्यका

चितवनतें निर्जरा बध नाहीं। रागादिकके घटे निर्जरा है, रागादिक भए बंध है। तातें रागादिकके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान नाहीं, तातें अन्यथा माने है।

## [ निर्विकल्प दशा विचार ]

वहां वह पूछे है कि ऐसे है तौ निर्विकल्प अनुभव दशाविर्षे नयप्रमाण निक्षेपादिकका वा दर्शन ज्ञानादिकका भी विकल्पकरनेका निषेध किया है, सो कैसे है ?

ताका उत्तर—जे जीव इनही विकल्पनिविषे लगि रहे हैं, अभेदरूप एक आपाकौं अनुभवै नाही हैं, तिनकौं ऐसा उपदेश दिया है, जो ए सर्वविकल्प वस्तुका निश्चयकरनेकौं कारन हैं। वस्तुका निश्चय भये इनका प्रयोजन किछू रहता नाहीं। तातैं इन विकल्पनिकौं भी छोडि अभेदरूप एक आत्माका अनुभव करना। इनके विचाररूप विकल्पनिही विषै फँसि रहना योग्य नाहीं। बहुरि वस्तुका निश्चय भए पीछैं ऐसा नाहीं, जो सामान्यरूप स्वद्रव्यहीका चिंतवन रह्या करै। स्वद्रव्यका वा परद्रव्यका सामान्यरूप वा विशेषरूप जानना होय, परन्तु वीतरागता लिए होय, तिसहीका नाम निर्विकल्प दशा है।

तहां वह पूछे है—यहां तौ बहुत विकल्प भए, निर्विकल्पसंज्ञा कैसे सभवै ?

ताका उत्तर—निर्विचार होने का नाम निर्विकल्प नाहीं

है।। तातैं छद्मस्थकै जानना विचार लिए है। वाका अभाव मानें ज्ञानका अभाव होय, तब जडपना भया सो आत्माकै होता नाहीं। तातैं विचार तौ रहै। बहुरि जो कहिए, एक सामान्यका ही विचार रहता है, विशेषका नाहीं। तौ सामान्यका विचार तौ बहुतकाल रहता नाहीं वा विशेषकी अपेक्षाबिना सामान्यका स्वरूप भासता नाहीं। बहुरि कहिए—आपहीका विचार रहता है, परका नाहीं, सौ परविषै परबुद्धि भए बिना आपविषै निजबुद्धि कैसे आवै? तहां यह कहै है, समयसारविषै ऐसा कह्या है—

## [ संवराधिकार कलश ]

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितं ॥५ १३०॥

याका अर्थ यहु—भेदविज्ञान तावत् निरंतर भावना, यावत् परतैं छूटि ज्ञान है सो ज्ञानविषै स्थित होय। तातैं भेद विज्ञान छूटै परका जानना मिटि जाय है। केवल आपहीकौं आप जान्या करै है।

सो यहां तौ यहु कह्या है—पूर्व आपा परका एक जानै था, पीछै जुदा जाननेकौं—भेदविज्ञानकौं तावत् भावना ही योग्य है, यावत् ज्ञान पररूपकौं भिन्न जानि अपने ज्ञानस्वरूपहीविषै निश्चित होय। पीछै भेदविज्ञान करनेंका प्रयोजन रह्या नाहीं।

स्वयमेव परकौं पररूप आपकौं आपरूप जान्या करै है। ऐसा नाहीं, जो परद्रव्यका जानना ही मिटि जाय है। तातैं परद्रव्यका जानना व स्वद्रव्यका विशेष जानने का नाम विकल्प नाहीं है। तौ कैसैं है? सो कहिये है—राग द्वेषके वशतैं किसी ज्ञेयके जाननेतैं छुडावना ऐसैं वारवार उपयोगका भ्रमावना, ताका नाम विकल्प है। बहुरि जहाँ वीतरागरूप होय जाकौं जानै है, ताकौ यथार्थ जानै है। अन्य अन्य ज्ञेयके जाननेके अर्थि उपयोगकौं नाहीं भ्रमावै है। तहाँ निर्विकल्पदशा जाननी।

यहाँ कोऊ कहै—छद्मस्थका उपयोग तौ नाना ज्ञेयविषैं भ्रमै ही भ्रमै। तहाँ निर्विकल्पता कैसैं संभवै है?

ताका उत्तर—जेते काल एक जाननेरूप रहै, तावत् निर्विकल्प नाम पावै। सिद्धान्तविषै ध्यानका लक्षण ऐसा ही किया है।

"एकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानम् *"

[तत्त्वा. सू. ९—२७]

एकका मुख्य चिंतवन होय अर अन्य चिंता रुकै, ताका नाम ध्यान है। सर्वार्थसिद्धि सूत्रकी टीकाविषैं बहु विशेष कहा है—जो सर्व चिंता रुकनेका नाम ध्यान होय, तौ अचेतनपनौ होय जाय। बहुरि ऐसी भी विवक्षा है—जो संतान अपेक्षा नाना ज्ञेयका भी जानना होय। परन्तु यावत् वीतरागता

* उत्तम संहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्' ऐसा पूरा सूत्र है।

रहैं, रागादिककरि आप उपयोगकौं भ्रमावै नाहीं, तावत् निर्विकल्पदशा कहिए है।

बहुरि वह कहै ऐसें है, तौ परद्रव्यतैं छुडाय स्वरूपविषैं उपयोग लगावनेका उपदेश काहेकौं दिया है?

ताका समाधान—जो शुभ अशुभ भावनिकौं कारण पर द्रव्य हैं, तिनविषैं उपयोग लगे जिनकै राग द्वेष होइ आवैं है, अर स्वरूपचिंतवन करें तौ राग द्वेष घटैं हैं, ऐसैं नीचली अवस्थावारे जीवनिकौं पूर्वोक्त उपदेश है। जैसें कोऊ स्त्री विकार भावकरि काहूकै घर जाय थी, ताकौं मनैं करी—परघर मति जाय, घरमैं बैठि रहौ। बहुरि जो स्त्री निर्विकार भावकरि काहूकै घर जाय, यथायोग्य प्रवर्त्तै तौ किछू दोष है नाहीं। तैसें उपयोगरूप परणति रागद्वेषभावकरि परद्रव्यनिविषैं प्रवर्त्तै थी, ताकौं मनैं करी परद्रव्यनिविषैं मति प्रवर्त्तै, स्वरूपविषैं मग्न रहौ। बहुरि जो उपयोगरूप परणति वीतरागभावकरि परद्रव्यकौं जानि यथायोग्य प्रवर्त्तै, तौ किछू दोष है नाहीं।

बहुरि वह कहै है—ऐसैं है, तौ महामुनि परिग्रहादिक चिंतवनका त्याग काहेकौं करैं हैं।

ताका समाधान—जैसें विकाररहित स्त्री कुशीलके कारण परघरनिका त्याग करै, तैसें वीतरागपरणति राग द्वेषके कारण परद्रव्यनिका त्याग करै है, बहुरि जे व्यभिचारके कारण नाहीं,

ऐसे परघर जानका त्याग है नाहीं। तैसे ज राग द्वेषको कारण नाहीं ऐसे परद्रव्य जाननेका त्याग है नाहीं।

बहुरि वह कहै है—जैसे जो स्त्री प्रयोजन जानि पितादिकके घरि जाय तौ जाओ, विना प्रयोजन जिस तिसके घर जाना तौ योग्य नाहीं। तैसे परणतिको प्रयोजन जानि सप्ततत्त्वनिका विचार करना। विना प्रयोजन गुणस्थानादिकका विचार करना योग्य नाहीं।

ताका समाधान—जैसे स्त्री प्रयोजन जानि पितादिक वा मित्रादिकके भी घर जाय, तैसे परणति तत्वनिका विशेष जाननका कारणगुणस्थानादिक कर्मादिककौं भी जान। बहुरि यहां ऐसा जानना जैसे शीलवती स्त्री उद्यमकरि तौ विटपुरुषनिके स्थान न जाय, जो परवश तहां जाना बनि जाय, तहां कुशील न सेवै, तौ स्त्री शीलवती ही है। तैसे वीतराग परणति उपायकरि तौ रागादिकके कारण परद्रव्यनिविषै न लागै। जो स्वयमेव तिनका जानना होय जाय तहां रागादि न करै तौ परणति शुद्ध ही है, तातै स्त्री आदिकी परीषह मुनीनके होय, तिनिकौं जान ही नाहीं, अपने स्वरूपहीका जानना रहै है, ऐसा मानना मिथ्या है। उनकौं जानै तौ है, परन्तु रागादिक नाहीं करै है। या प्रकार परद्रव्यकौं जानत भी वीतरागभाव हो है, ऐसा श्रद्धान करना।

बहुरि वह कहै—ऐसे है तौ शास्त्रविषै ऐसैं कैसैं कह्या है,

जो आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है।

ताका समाधान—अनादितैं परद्रव्यविषै आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण था, ताकै छुडावनेकौं यहु उपदेश है। आपहीविषै आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण भए परद्रव्यविषै रागद्वेषादिपरणति करनेका श्रद्धान वा ज्ञान वा आचरण मिटि जाय, तब सम्यग्दर्शनादि हो है। जो परद्रव्यका परद्रव्यरूप श्रद्धानादि करनेतैं सम्यग्दर्शनादि न होत होय, तौ केवलीकै भी तिनका अभाव होय। जहां परद्रव्यकौं बुरा जानना, निजद्रव्यकौं भला जानना तहां तौ राग द्वेष सहज ही भया। जहाँ आपकौं आपरूप परकौं पररूप यथार्थ जान्या करै, तैसे ही श्रद्धानादिरूप प्रवर्तै, तब ही सम्यग्दर्शनादि हो है। ऐसे जानना। तातै बहुत कहा कहिए, जैसे रागादि मिटावनेका श्रद्धान होय, सो ही श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। बहुरि जैसे रागादि मिटावनेका जानना होय, सो ही जानना सम्यग्ज्ञान है। बहुरि जैसे रागादि मिटै, सो ही आचरण सम्यक्चारित्र है। ऐसा ही मोक्षमार्ग मानना योग्य है। या प्रकार निश्चयनयका आभास लिए एकांतपक्षके धारी जैनाभास तिनकै मिथ्यात्वका निरूपन किया।

## [ एकान्तपक्षी व्यवहारावलम्बी जैनाभास ]

अब व्यवहाराभास पक्षके जैनाभासनिकै मिथ्यात्वका निरूपण कीजिए है—जिन आगमविषै जहां व्यवहारकी मुख्यताकरि

उपदेश है, ताकौं मानि बाह्यसाधनादिकहीका श्रद्धानादिक करै है, तिनके सर्व धर्मके अंग अन्यथारूप होय मिथ्याभावकौं प्राप्त होय है सो विशेष कहिए हैं। यहां ऐसा जानि लैना— व्यवहार धर्मकी प्रवृत्तित पुण्यबंध होय है, तातैं पापप्रवृत्ति अपेक्षा तौ याका निषेध है नाहीं। परन्तु इहां जो जीव व्यवहार प्रवृत्तिही-करि सन्तुष्ट होय, सांचा मोक्षमार्गविषैं उद्यमी न होय है, ताकौं मोक्षमार्गविषैं सन्मुख करनेका तिस शुभरूप मिथ्या प्रवृत्तिका भी निषेधरूप निरूपण कीजिए है। जो यहु कथन कीजिए है, ताकौं सुनि जो शुभप्रवृत्ति छोडि अशुभविषै प्रवृत्ति करौगे, तौ तुम्हारा बुरा होगा, और जो यथार्थ श्रद्धानकरि मोक्षमार्गविषैं प्रवर्तौगे, तौ तुम्हारा भला होगा। जैसें कोऊ रोगी निर्गुण औषधिका निषेध सुनि औषधि साधन छोडि कुपथ्य करैगा, तौ वह मरैगा, वैद्यका कछु दोष है नाहीं। तैसे ही कोउ संसारी पुण्यरूप धर्मका निषेध सुनि धर्मसाधन छोडि विषय कषायरूप प्रवर्त्तैगा तौ वह ही नरकादिविषैं दुःख पावैगा। उपदेश दाताका तौ दोष नाहीं। उपदेश देनेवालेका तौ अभिप्राय असत्य श्रद्धानादि छुडाय मोक्षमार्गविषैं लगावनेका जानना। सो ऐसा अभिप्रायतैं इहां निरूपण कीजिए है।

## [ कुल अपेक्षा धर्म विचार ]

इहां कोई जीव तौ कुलक्रमकरि ही जैनी है, जैनधर्मका स्वरूप जानते नाहीं। परन्तु कुलविषैं जैसी प्रवृत्ति चली आई,

तैसैं प्रवर्तै है। सो जैसैं अन्यमती अपने कुलधर्मविषै प्रवर्तै है, तैसैं ही यहु प्रवर्तै है। जो कुलक्रमहीतैं धर्म होय, तौ मुसलमान आदि सर्व ही धर्मात्मा होंय। जैनधर्मका विशेष कहा रह्या? सोई कह्या है—

लोयम्मि रायणीई णाय कुलकम्मि कइयावि।
किं पुण तिलोयपहुणो जिणंदधम्माहिगारम्मि ॥१॥

[ उप० सि० र० मा० ७ ]

याका अर्थ—लोकविषै यहु राजनीति है—कदाचित् कुलक्रमकरि न्याय नाहीं होय है। जाका कुल चोर होय, ताकौं चोरी करता पकरै, तौ वाका कुलक्रम जानि छोड़ै नाहीं, दंड ही दे। तौ त्रिलोकप्रभु जिनेन्द्रदेवके धर्मका अधिकारविषै कहा कुलक्रम अनुसारि न्याय संभवै। बहुरि जो पिता दरिद्री होय आप धनवान होय, तहां तौ कुलक्रम विचारि आप दरिद्री रहता ही नाहीं। तौ धर्मविषै कुलका कहा प्रयोजन है? बहुरि पिता नरकि जाय पुत्र मोक्ष जाय, तहां कुलक्रम कैसैं रह्या? जो कुल ऊपरि दृष्टि होय, तौ पुत्र भी नरकगामी होय। तातैं धर्मविषै कुलक्रमका किछू प्रयोजन नाहीं। शास्त्रनिका अर्थ विचारि जो कालदोषतैं जिनधर्मविषै भी पापी पुरुषनिकरि कुदेव कुगुरु कुधर्मसेवनादिरूप वा विषयकषायपोषणादिरूप विपरीत प्रवृत्ति चलाई होइ, ताका त्याग करि जिनआज्ञा अनुसारि प्रवर्तना योग्य है।

इहां कोऊ कहै—परपरा छोडि नवीन मार्ग विषै प्रवर्तना योग्य नाहीं। ताकौं कहिए है—

जौ अपनी बुद्धिकरि नवीन मार्ग पकरै, तौ युक्त नाहीं। जो परपरा अनादिनिधन जैनधर्मका स्वरूप शास्त्रनिविषै लिख्या है, ताकी प्रवृत्ति मेटि बीचिमै पापीपुरुषौं अन्यथा प्रवृत्ति चलाई, तौ ताकौं परपरायमार्ग कैसे कहिए। बहुरि ताकौं छोडि पुरातन जैनशास्त्रनिविषै जैसा धर्म लिख्या था, तैसे प्रवर्त्तै, तौ ताकौं नवीन मार्ग कैसे कहिए। बहुरि जो कुलविषै जैसे जिनदेवकी आज्ञा है, तैसे ही धर्मकी प्रवृत्ति है, तौ आपकौ भी तैसे ही प्रवर्तना योग्य है। परन्तु ताकौं कुलाचार न जानना, धर्म जानि ताके स्वरूप फलादिकका निश्चय करि अंगीकार करना। जो साचा भी धर्मकौ कुलाचार जानि प्रवर्त्तै है, तौ वाकौं धर्मात्मा न कहिए। जातै सर्व कुलके उस आचरणकौ छोडै तौ आप भी छोडि दे। बहुरि जो वह आचरण करै है, सो कुलका भयकरि करै है। किछु धर्मबुद्धितै नाहीं करै है, तातै वह धर्मात्मा नाहीं। तातै विवाहादि कुलसबधी कार्यनिविषै तौ कुलक्रमका विचार करना। और धर्मसबंधी कार्यनिविषै कुलका विचार न करना। जैसे धर्ममार्ग साचा है, तैसे प्रवर्तना योग्य है।

## [ परीक्षा रहित आज्ञानुसारी जैनत्वका प्रतिषेध ]

बहुरि केई आज्ञा अनुसारि जैनी हो हैं। जैसे शास्त्रविषै आज्ञा है, तैसे मानै है। परन्तु आज्ञाकी परीक्षा करै

सो आज्ञा ही मानना धर्म होय, तौ सर्व मतवाले अपने २ शास्त्र की आज्ञा मानि धर्मात्मा होंय। तातैं परीक्षाकरि जिनवचननिकौं सत्यपनो पहिचानि जिनआज्ञा माननी योग्य है। बिना परीक्षा किए सत्य असत्यका निर्णय कैसे होय? अर विना निर्णय किए जैसे अन्यमती अपने २ शास्त्रनिकी आज्ञा मानैं हैं, तैसें यानैं जैनशास्त्रनिकी आज्ञा मानी। यहु तौ पक्षकरि आज्ञा मानना है।

कोऊ कहै—शास्त्रविषैं दश प्रकार सम्यक्त्वविषै आज्ञा-सम्यक्त्व कह्या है, वा आज्ञाविचयधर्मध्यानका भेद कह्या है, वा निःशंकित अंगविषैं जिनवचनविषै संशय करना निषेध्या है, सो कैसैं है?

ताका समाधान—शास्त्रनिविषै कथन केई तौ ऐसे हैं, जिनकी प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि परीक्षा करि सकिए है। बहुरि केई कथन ऐसे हैं, जो प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर नाहीं। तातैं आज्ञाहीकरि प्रमाण होय हैं। तहां नाना शास्त्रनिविषै जो कथन समान होय, तिनकी तौ परीक्षा करनेका प्रयोजन ही नाहीं। बहुरि जो कथन परस्परविरुद्ध होइ, तिनिविषै जो कथन प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर होय, तिनकी तौ परीक्षा करनी। तहां जिन शास्त्रके कथनकी प्रमाणता ठहरै, तिनि शास्त्रविषैं जो प्रत्यक्ष अनुमानगोचर नाहीं, ऐसे कथन किए होय, तिनकी भी प्रमाणता करनी। बहुरि जिनि शास्त्रनिके कथनकी प्रमाणता न ठहरै, तिनके सर्व ही कथनकी अप्रमाणता माननी।

इहां कोऊ कहै—परीक्षा किए कोई कथन कोई शास्त्रविषै प्रमाण भासै, कोई कथन कोई शास्त्रविषै अप्रमाण भासै तौ कहा करिए ?

ताका समाधान—जो आप्तके भाखे शास्त्र हैं, तिनिविषै कोई ही कथन प्रमाण विरुद्ध न होय। जातै कै तौ जानपना ही न होय, कै रागद्वेष होय, तौ असत्य कहै। सो आप्त ऐसा होय नाहीं, तातै परीक्षा नीकी नाहीं करी है, तातै भ्रम है।

बहुरि वह कहै है—छद्मस्थकै अन्यथा परीक्षा होय जाय, तौ कहा करै ?

ताका समाधान—साँची झूठी दोऊ वस्तुनिकौं मीडे अर प्रमाद छोडि परीक्षा किए तौ साँची ही परीक्षा होय। जहां पक्षपातकरि नीके परीक्षा न करै, तहां ही अन्यथा परीक्षा हो है।

बहुरि वह कहै है, जो शास्त्रनिविषै परस्पर विरुद्ध कथन तौ घन कौन कौनकी परीक्षा करिए।

ताका समाधान—मोक्षमार्गविषै देव गुरु धर्म वा जीवादि तत्त्व वा बंधमोक्षमार्ग प्रयोजनभूत हैं, सो इनिकी परीक्षा करि लेनी। जिन शास्त्रनिविषै ए साँच कहे, तिनकी सर्व आज्ञा माननी। जिनविषै ए अन्यथा प्ररूपे, तिनकी आज्ञा न माननी। जसे लोकविषै जो पुरुष प्रयोजनभूत कार्यनिविषै झूठ न बोलै, सो प्रयोजनरहितकार्यनिविषै कैसैं झूठ बोलैगा। तैसैं जिस शास्त्रविषै प्रयोजनभूत देवादिकका स्वरूप अन्यथा न कह्या,

तिनविषैं प्रयोजन रहित द्वीप समुद्रादिकका कथन अन्यथा कैसे होय ? जातैं देशादिकका कथन अन्यथा किए वक्ताके विषय कषाय पोषे जांय हैं।

इहां प्रश्न—देवादिकका कथन तौ अन्यथा विषयकषायत किया तिन ही शास्त्रनिविषैं अन्य कथन अन्यथा काहेकौं किया ?

ताका समाधान—जो एक ही कथन अन्यथा कहै, वाका अन्यथापना शीघ्र ही प्रगट होय जाय। जुदी पद्धति ठहरै नाहीं। तातैं घने कथन अन्यथा करनतैं जुदी पद्धति ठहरै। तहां तुच्छबुद्धिभ्रममैं पडिजाय—यहु भी मत है। तातैं प्रयोजनभूतका अयथार्थनाका मेलनेके अर्थि अप्रयोजनभूत भी अन्यथा कथन घने किए। बहुरि प्रतीति अनावनेके अर्थि कोई २ साचा भी कथन किया। परन्तु स्याना होय सो भ्रम मैं परै नाहीं। प्रयोजनभूत कथनकी परीक्षाकरि जहां साच भासै, तिस मतकी सर्व आज्ञा मानै, सो परीक्षा किए जैनमत ही साचा भासै है। जातैं याका वक्ता सर्वज्ञ वीतराग है, सो झूठ काहेकौं कहै ऐसैं जिन आज्ञा मानै, सो साचा श्रद्धान होय, ताका नाम आज्ञासम्यक्त्व है। बहुरि तहां एकाग्र चिन्तवन होय, ताहीका नाम आज्ञाविचय धर्मध्यान है। जो ऐसैं न मानिए अर विना परीक्षा किए ही आज्ञा माने सम्यक्त्व वा धर्मध्यान होय जाय, तौ जो द्रव्यलिंगी आज्ञा मानि मुनि भया, आज्ञाअनुसारि

साधनकरि ग्रैवेयिक पर्यंत प्राप्त होय, ताकै मिथ्यादृष्टिपना कैसे रह्या ? तातें विशुद्ध परीक्षाकरि आज्ञा माने ही सम्यक्त्व वा धर्मध्यान होय है। लोकविषै भी काहू प्रकार परीक्षा भए ही पुरुषकी प्रतीति कीजिए है। बहुरि तैं कह्या—जिनवचनविषै संशय करनेतें सम्यक्त्वका शंका नामा दोष हो है, सो 'न जानैं यह कैसे है, ऐसा मानि निर्णय न कीजिए, तहां शंका नाम दोष हो है। बहुरि जो निर्णय करनेको विचार करतें ही सम्यक्त्वको दोष लागै, तौ अष्टसहस्रीविषै आज्ञाप्रधानतें परीक्षाप्रधानको उत्तम काहेको कह्या ? पृच्छना आदि स्वाध्यायके अंग कैसे कहे। प्रमाण नयतें पदार्थनिका निर्णय करनेका उपदेश काहेकौं दिया। तातें परीक्षाकरि आज्ञा माननी योग्य है। बहुरि केई पापी पुरुषां अपना कल्पित कथन किया है अर तिनकों जिनवचन ठहराया है, तिनका जैनमतका शास्त्र जानि प्रमाण न करना। तहां भी प्रमाणादिकतें परीक्षाकरि वा परस्पर शास्त्रनतें विधि मिलाय वा ऐसें संभवै है कि नाहीं, ऐसा विचारकरि विरुद्ध अर्थको मिथ्या ही जानना। जैसे ठिग आप पत्र लिखि तामैं लिखनेवालेका नाम किसी साहूकारका धरया, तिस नामके भ्रमतें धनको ठिगावै, तौ दरिद्री ही होय। तैसें पापी आप ग्रंथादि बनाय, तहां कर्त्ताका नाम जिन गणधर आचार्यनिका धरया, तिस नामके भ्रमतें झूठा श्रद्धान करै, तौ मिथ्यादृष्टी ही होय।

तिसविषैं प्रयोजन रहित होय समुद्रादिकका कथन अन्यथा कैसे होय ? जातैं देवादिकका कथन अन्यथा किए वक्ताके विषय कषाय पोषे जांय हैं।

यहां प्रश्न—देवादिकका कथन तौ अन्यथा विषयकषायपोषक किया तिन ही शास्त्रनिविषैं अन्य कथन अन्यथा काहेकौं किया ?

ताका समाधान—जो एक ही कथन अन्यथा कहै, वाका अन्यथापना शीघ्र ही प्रगट होय जाय। जुदी पद्धति ठहरै नाहीं। तातैं घनें कथन अन्यथा करनेतैं जुदी पद्धति ठहरै। तहां तुच्छबुद्धिभ्रममैं पडिजाय—यहु भी मत है। तातैं प्रयोजनभूतका अन्यथापनाका मेलनेके अर्थि अप्रयोजनभूत भी अन्यथा कथन घनें किए। बहुरि प्रतीति अनावनेके अर्थि काई २ सांचा भी कथन किया। परन्तु स्याना होय सो भ्रम मैं परै नाहीं। प्रयोजनभूत कथनकी परीक्षाकरि जहां सांच भासै, तिस मतकी सर्व आज्ञा मानैं, सो परीक्षा किए जैनमत ही सांचा भासै है। जातैं याका वक्ता सर्वज्ञ वीतराग है, सो झूठ काहेकौं कहै ऐसे जिन आज्ञा मानै, सो सांचा श्रद्धान होय, ताका नाम आज्ञासम्यक्त्व है। बहुरि तहां एकाग्र चिन्तवन होय, ताहीका नाम आज्ञाविचय धर्मध्यान है। जो ऐसें न मानिए अर बिना परीक्षा किए ही आज्ञा माने सम्यक्त्व वा धर्मध्यान होय जाय, तौ जो द्रव्यलिंगी आज्ञा मानि मुनि भया, आज्ञाअनुसारि

साधनकरि ग्रैवेयिक पर्यन्त प्राप्त होय, ताकै मिथ्यादृष्टिपना कैसे रहा? तातै किछू परीक्षाकरि आज्ञा माने ही सम्यक्त्व वा धर्मध्यान होय है। लोकविषै भी काई प्रकार परीक्षा भए ही पुरुषकी प्रतीति कीजिए है। बहुरि त कह्या—जिनवचनविषै संशय करनेतै सम्यक्त्वका शंका नामा दोष हो है, सो 'न जानै यह कैसे है, ऐसा मानि निर्णय न कीजिए, तहां शंका नाम दोष हो है। बहुरि जो निर्णय करनेको विचार करते ही सम्यक्त्वको दोष लागै, तौ अष्टसहस्रीविषै आज्ञाप्रधानतै परीक्षाप्रधानको उत्तम काहेकौं कह्या? पृच्छना आदि स्वाध्यायके अंग कैसे कहे। प्रमाण नयत पदार्थनिका निर्णय करनेका उपदेश काहेकौं दिया। तातै परीक्षाकरि आज्ञा माननी योग्य है। बहुरि केई पापी पुरुष अपना कल्पित कथन किया है अर तिनकौं जिनवचन ठहराया है, तिनकौं जैनमतका शास्त्र जानि प्रमाण न करना। तहां भी प्रमाणादिकतै परीक्षाकरि वा परस्पर शास्त्रनत विधि मिलाय वा ऐसे संभवै है कि नाहीं, ऐसा विचारकरि विरुद्ध अर्थकौं मिथ्या ही मानना। जैसे ठिग आप पत्र लिखि तामै लिखनेवालेका नाम किसी साहूकारका धरया, तिस नामके भ्रमतै धनको ठिगावै, तौ दरिद्री ही होय। तैसे पापी आप ग्रंथादि बनाय, तहां कर्त्ताका नाम जिन गणधर आचार्यनिका धरया, तिस नामके भ्रमतै झूठा श्रद्धान करै, तो मिथ्यादृष्टी ही होय।

बहुरि वह कहै है—गोम्मटसारविषैं १ ऐसा कह्या है—सम्यग्दृष्टि जीव अज्ञानगुरुके निमित्ततैं झूठ भी श्रद्धान करै, तौ आज्ञा माननेतैं सम्यग्दृष्टि ही होय है। सो यहु कथन कैसैं किया है?

ताका उत्तर—जे प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर नाहीं, सूक्ष्मपनेतैं जिनका निर्णय न होय सकै, तिनिकी अपेक्षा यहु कथन है। मूलभूत देव गुरु धर्मादि वा तत्त्वादिकका अन्यथा श्रद्धान भए, तौ सर्वथा सम्यक्त्व रहै नाहीं, यहु निश्चय करना। तातैं बिना परीक्षा किए केवल आज्ञाहीकरि जैनी हैं, ते भी मिथ्यादृष्टि जाननें। बहुरि केई परीक्षा करि भी जैनी हैं, परन्तु मूल परीक्षा नाहीं करैं हैं। दया शील तप संयमादि क्रियानिकरि वा पूजा प्रभावनादि कार्यनिकरि वा अतिशय चमत्कारादिकरि वा जिनधर्मतैं इष्ट प्राप्ति होनेकरि जिनमतकौं उत्तम जानि प्रीतिवंत होय जैनी होय हैं। सो अन्यमतविषैं भी तौ ए कार्य पाइए हैं, तातैं इनि लक्षणनिविषैं अतिव्याप्ति पाइए है।

कोऊ कहै—जैसैं जिनधर्मविषैं ए कार्य हैं, तैसैं अन्यमतविषैं नाहीं पाइए है। तातैं अतिव्याप्ति नाहीं।

ताका समाधान—यहु तौ सत्य है, ऐसैं ही है। परन्तु जैसैं तू दयादिक मानै है, तैसैं तौ वै भी निरूपैं हैं। परजीव-

१ सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥ २७ ॥

निकी रक्षाकौं दया तू कहै, सोई वे कहैं हैं ऐसे ही अन्य जानन।

बहुरि वह कहै हैं—उनके ठीक नाहीं । कबहू दया प्ररूपै, कबहू हिंसा प्ररूपै ।

ताका उत्तर—तहां दयादिकका अंशमात्र तौ आया । तातैं अति पापिपना इनि लक्षणनिकै पाइए है । इनिकरि सांची परीक्षा होय नाहीं । तौ कैसे होय । जिनधर्मविषै सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्र मोक्षमार्ग कह्या है । तहां सांचे देवादिकका वा जीवादिकका श्रद्धान किए सम्यक्त्व होय, वा तिनिकौं जानें सम्यग्ज्ञान होय, वा सांचा रागादिक मिटें सम्यक्चारित्र होय, सो इनिका स्वरूप जैसैं जिनमतविषै निरूपण किया है, तैसैं कहीं निरूपण किया नाहीं । वा जैनीबिना अन्यमती ऐसा कार्य करि सकते नाहीं । तातैं यहु जिनमतका सांचा लक्षण है । इस लक्षणकौं पहचानि जे परीक्षा करैं, तेई श्रद्धानी हैं । इस बिना अन्य प्रकारकरि परीक्षा करै हैं, ते मिथ्यादृष्टी ही रहै हैं ।

बहुरि केई संगतिकरि जैनधर्म धारै हैं । कोई महान्पुरुषको जिनधर्मविषै प्रवर्तता देखि आप भी प्रवर्त्तै हैं । केई देखा देखी जिनधर्मकी शुद्ध वा अशुद्ध क्रियानिविषैं प्रवर्त्तै हैं । इत्यादि अनेक प्रकारके जीव आप विचारकरि जिनधर्मका रहस्य नाहीं पहिचानैं हैं अर जैनी नाम धरावैं हैं ते सर्व मिथ्यादृष्टी ही जानने । इतना तो है, जिनमतविषै पापकी प्रवृत्तिविशेष नहीं होय सकै है अर पुण्यकेनिमित्त घने हैं । अर सांचा मा-

भी कारण तहां घनि रहे हैं। तातैं जु कुलादिकरि भी जैनी हैं, ते भी औरनितैं तौ भले ही हैं।

## [ आजीविकादि प्रयोजनार्थधर्मसाधनका प्रतिषेध ]

बहुरि जे जीव कपटकरि आजीविकाकै अर्थि वा बड़ाईकै अर्थि वा किछू विषयकषायमयवा प्रयोजनविचारि जैनी हो हैं, ते तौ पापी ही हैं अति तीव्रकषाय भए ऐसी बुद्धि आवै है। उनका सुलझना भी कठिन है। जैनधर्म तौ संसारका नाशकै अर्थि सेइए है। ताकरि जो संसारीक प्रयोजन साध्या चाहै, सो बड़ा अन्याय करै है। तातैं ते तौ मिथ्यादृष्टि हैं ही।

इहां कोऊ कहै—हिंसादिककरि जिन कार्यनिकौं करिए, ते कार्य धर्मसाधनकरि सिद्ध कीजिए, तौ बुरा कहा भया। दोऊ प्रयोजन सधै।

ताकौं कहिए है—पापकार्य अर धर्मकार्यका एक साधन किए पाप ही होय। जैसे कोऊ धर्मका साधन चैत्यालय बनाय, तिसहीकौं स्त्रीसेवनादि पापनिका भी साधन करै, तौ पापी ही होय। हिंसादिककरि भोगादिककै अर्थि जुदा मन्दिर बनावै, तौ बनावौ। परन्तु चैत्यालयविषैं भोगादि करना युक्त नाहीं। तैसैं धर्मका साधन पूजा शास्त्रादि कार्य हैं, तिनिहीकौं आजीविका आदि पापका भी साधन करै, तौ करौ परन्तु पूजादि कार्यनिविषैं तौ आजीविका आदिका प्रयोजन विचारना युक्त नाहीं।

इहां प्रश्न—जो ऐसे है तो मुनि भी धर्मसाधि परघर भोजन करै है वा साधर्मी साधर्मीका उपकार करै करावै हैं, सो कैसे बनै?

ताका उत्तर—जो आप तौ किछू आजीविका आदिका प्रयोजन विचार धर्म नाहीं साधै है, आपकौं धर्मात्मा जानि केई स्वयमेव भोजन उपकारादि करै है, तौ किछू दोष है नाहीं बहुरि जो आप ही भोजनादिकका प्रयोजन विचारि धर्मसाधै है, तो पापी है ही जे विरागी होय, मुनिपनो अंगीकार करै हैं, तिनिकै भोजनादिकका प्रयोजन नाहीं कोई दे तौ ले, नाहीं तौ समता राखै। संक्लेशरूप होय नाहीं। बहुरि आप हितकै अर्थि धर्म साधै है। उपकार करवानेका अभिप्राय नाहीं है। आपकै जाका त्याग नाहीं, ऐसा उपकार करावै। कोई साधर्मी स्वयमेव उपकार करै तौ करौ अर न करै तौ आपकै किछू संक्लेश होता नाहीं। सो ऐसे तौ योग्य है। अर आप ही आजीविका आदिका प्रयोजन विचारि बाह्य धर्मका साधन करै, जहां भोजनादिक उपकार कोई न करै, तहां संक्लेश करै, याचना करै, उपाय करै, वा धर्मसाधनविषै शिथिल होय जाय, सो पापी ही जानना। ऐसे संसारीक प्रयोजन लिए जे धर्म साधै हैं, ते पापी भी हैं अर मिथ्यादृष्टी हैं हो। या प्रकार जिनमतवाले भी मिथ्यादृष्टि जानने। अब इनकै धर्मका साधन कैसे पाइए है, सो विशेष दिखाइए है—

निकी पहचानि नाहीं। अर यहां अपराध केता लागै है, गुण केता हो है, सो नफा टोटाका ज्ञान नाहीं, या विधि अविधिका ज्ञान नाहीं। बहुरि शास्त्राभ्यास करै है। तहां पद्धतिरूप प्रवर्तै है। जो बांचै है, तौ औरनिकौं सुनाय दे है। जो पढ़ै है, तौ आप पढि जाय है। सुनै है, तौ कहै है सो सुनि ले है। जो शास्त्राभ्यासका प्रयोजन है, ताकौं आप अन्तरंग विषै नाहीं अवधारै है। इत्यादि धर्मकार्यनिका धर्मकौं नाहीं पहिचानै। केई कै तौ कुलविषै जैसे बडे प्रवर्तैं,तैसें हमकौं भी करना, अथवा और करै हैं, तैसें हमकौं भी करना, वा ऐसें किए हमारा लोभादिकको सिद्धि होगी, इत्यादि विचार लिए अभूतार्थ धर्मको साधै है। बहुरि केई जीव ऐसे हैं, जिनके किए तौ कुलादिरूप बुद्धि है, किछू धर्मबुद्धि भी है, तातैं पूर्वोक्तप्रकार भी धर्मका साधन करै है अर किछू आगैं कहिए है, तिस प्रकार करि अपने परिणामनिकौं भी सुधारै है। मिश्र भी पाइए है। बहुरि केई धर्मबुद्धिकरि धर्म साधै हैं, परन्तु निश्चयधर्मकौं न जानै हैं। तातैं अभूतार्थ रूप धर्मकौं साधै है। तहां व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को मोक्षमार्ग जानि तिनिका साधन करै है। तहां शास्त्रविषै देव गुरु धर्मकी प्रतीति किए सम्यक्त्व होना कहा है। ऐसी आज्ञा मानि अरहंत देव निर्ग्रन्थगुरु जैनशास्त्र बिना औरनिकौं नमस्कारादि करनेका त्याग किया है। परन्तु तिनिका

गुण अवगुणकी परीक्षा नाहीं करै हैं। अथवा परीक्षा भी करै है तो तत्त्वज्ञान पूर्वक सांची परीक्षा नाहीं करै है बाह्यलक्षणनिकरि परीक्षा करै हैं। ऐसे प्रतीतिकरि सुदेव गुरु शास्त्रनिकी भक्तिविषैं प्रवर्त्तै हैं।

## [ अरहंतभक्तिका अन्यथा रूप ]

तहाँ अरहंत देव हैं, सो इंद्रादिकरि पूज्य हैं, अनेक अतिशयसहित हैं, क्षुधादि दोषरहित हैं, शरीरकी सुंदरताकौं धरैं हैं, स्त्रीसंगमादि रहित हैं, दिव्यध्वनिकरि उपदेश दे हैं, केवल ज्ञानकरि लोकालोक जानैं हैं, काम क्रोधादिक नष्ट किए हैं, इत्यादि विशेषण कहे हैं। तहाँ इननिविषैं केई विशेषण पुद्गलके आश्रय, केई जीवके आश्रय हैं। तिनकौं भिन्न भिन्न नाहीं पहिचानैं हैं। जैसैं असमानजातीय मनुष्यादि पर्यायनिविषैं जीव पुद्गलके विशेषणकौं भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है, तैसैं यह असमान जातीय अरहंतपर्यायविषैं जीव पुद्गलके विशेषणनिकौं भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है। बहुरि जे बाह्य विशेषण हैं, तिनकौं तौ जानि तिनकरि अरहंतदेवकौ महतपनो विशेष मानैं हैं। अर जे जीवके विशेषण हैं, तिनकौं यथावत् न जानि तिनकरि अरहंतदेवको महतपनो आज्ञा अनुसार मानैं हैं। अथवा अन्यथा मानै है। जातैं यथावत् जीवका विशेषण जानैं मिथ्यादृष्टी रहै नाहीं। बहुरि तिनि अरहंतनिकौं स्वर्गमोक्षका

दाता दीनदयाल अधमउधारक पतितपावन मानै है सो अन्य-मती कर्तृत्वबुद्धितैं ईश्वरकौं जैसे मानैं हैं, तैसैं यहु अरहतकौं मानै है ऐसा नाहीं जानै है—फलतौ अपने परिणामनिका लागै है, अरहतनिकौं निमित्त मानै हैं, तातैं उपचारकरि वे विशेषण संभवै हैं। अपनें परिणाम शुद्ध भए विना अरहत ही स्वर्गमोक्षादिका दाता नाहीं। बहुरि अरहतादिकके नामादिकतैं श्वानादिक स्वर्ग पाया। तहां नामादिकका ही अतिशय मानै हैं। विना परिणाम नाम लेनेवालेकौंभी स्वर्गकी प्राप्ति न होय, तौ सुननेवालेकैं कैसे होय। श्वानादिककै नाम सुननेके निमित्ततैं मंदकषायरूप भाव भए हैं। तिनका फल स्वर्ग भया है। उपचारकरि नामहीकी मुख्यता करी है। बहुरि अरहतादिकके नाम पूजनादिकतैं अनिष्ट सामग्रीका नाश इष्ट सामग्रीकी प्राप्ति मानि रोगादि मेटनेके अर्थि वा धनादिकी प्राप्ति के अर्थि नाम ले है वा पूजनादि करै है। सो इष्ट अनिष्टके तौ कारण पूर्वकर्मका उदय है। अरहत तौ कर्त्ता है नाहीं। अरहतादिककी भक्तिरूप शुभोपयोग परिणामनितैं पूर्व पापका संक्रमणादिक होय जाय है। तातैं उपचारकरि अनिष्टका नाशकौं इष्टकी प्राप्तिकौं कारण अरहतादिककी भक्ति कहिए है। अर जे जीव पहलैं ही संसारी प्रयोजन लिए भक्ति करै, ताकै तौ पापहीका अभिप्राय भया। कांक्षा विचिकित्सारूप भाव भए तिनिकरि पूर्वपापका संक्रमणादि कैसे होय? तहुरि तिनका कार्यसिद्ध न भया।

बहुरि केई जीव भक्तिकौं मुक्तिका कारण जानि तहां अति अनुरागी होय प्रवर्त्तै श्रद्धान भया। सो भक्ति तौ रागरूप है। रागतैं बंध है। तातैं मोक्षका कारण नाहीं। जब रागका उदय आवै, तब भक्ति न करै, तौ पापानुराग होय। तातैं अशुभ राग छोडनेकौं ज्ञानी भक्ति विषै प्रवर्त्तै हैं। वा मोक्षमार्गकौं बाह्य निमित्तमात्र भी जानै हैं। परन्तु यहां ही उपादेयपना मानि सन्तुष्ट न हो हैं। शुद्धोपयोगका उद्यमी रहै हैं। सो ही पंचास्तिकायव्याख्याविषै कह्या[1] है —

इयं भक्ति केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। तीव्ररागज्वरविनोदार्थमस्थानरागनिषेधार्थं क्वचित् ज्ञानिनोपि भवति ॥

याका अर्थ—यहु भक्ति केवलभक्ति ही है प्रधान जाकै ऐसा अज्ञानीजीवके हो है। बहुरि तीव्र रागज्वर मेटनेकै अर्थि वा कुठिकानै रागनिषेधनेकै अर्थि कदाचित् ज्ञानीकै भी हो है।

तहां वह पूछै है ऐसैं है, तौ ज्ञानीतैं अज्ञानीकै भक्तिकी विशेषता होती होगी।

ताका उत्तर—यथार्थपनेकी अपेक्षा तौ ज्ञानीकै सांची भक्ति

[1] अयं हि स्थूल-लक्ष्यतया केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। उपरितनभूमिकायामलब्धास्पदस्यास्थानरागनिषेधार्थं तीव्ररागज्वरविनोदार्थं वा कदाचिज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति ॥ गा० १३६ ॥

है—अज्ञानीकै नाहीं है। अर रागभावकी अपेक्षा अज्ञानीकै श्रद्धानविषै भी मुक्तिकारण जाननेतैं अति अनुराग है। ज्ञानीकै श्रद्धानविषै शुभबंधकारण जाननेतैं तैसा अनुराग नाहीं है। बाह्य कदाचित ज्ञानीकै अनुराग घना हो है, कदाचित् अज्ञानीकै हो है, ऐसा जानना। ऐसें देवभक्तिका स्वरूप दिखाया।

## [ गुरुभक्तिका अन्यथा रूप ]

अब गुरुभक्तिका स्वरूप कैसें हो है, सो कहिए है :—

कोई जीव आज्ञानुसारी है। ते तौ ए जैनके साधु हैं, हमारे गुरू हैं, तातें इनिकी भक्ति करनी, ऐसें विचारि भक्ति करै हैं। बहुरि कोई जीव परीक्षा भी करैं हैं। तहां ए मुनि दया पालैं हैं, शील पालै हैं, धनादि नाहीं राखैं हैं, उपवासादि तप करै हैं, क्षुधादि परीषह सहैं हैं किसीसा क्रोधादि नाहीं करै हैं, उपदेश देय औरनिकों धर्मविषै लगावै हैं, इत्यादि गुण विचारि तिनविषै भक्तिभाव करै है। सो ऐसे गुण तौ परमहंसादिक अन्यमती हैं, तिनविषै वा जैनी मिथ्यादृष्टीनिविषै भी पाईए है। तातैं इनिविषै अतिव्याप्तपनों है। इनिकरि साची परीक्षा होय नाहीं। बहुरि जिन गुणोंको विचारै है, तिनविषै केई जीवाश्रित हैं, केई पुद्गलाश्रित हैं, तिनका विशेष न जानना, असमानजातीय मुनिपर्यायविषै एकत्व बुद्धितैं मिथ्यादृष्टि ही रहै है। बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी एकतारूप मोक्षमार्ग सोई

साचा लक्षण है । ताकौं पहिचानै नाहीं । जातैं यहु पहिचानि भए मिथ्यादृष्टी रहता नाहीं । ऐसैं मुनिनका सांचा स्वरूप न ही जानै, तौ सांची भक्ति कैसैं होय ? पुण्यबंधकौं कारणभूत शुभक्रियारूप गुणनिकौं पहचानि तिनकी सेवातैं अपना भला होना जानि तिनविषै अनुरागी होय भक्ति करै है ऐसैं गुरुभक्ति का स्वरूप कह्या।

## [ शास्त्रभक्तिका अन्यथा रूप ]

अब शास्त्रभक्तिका स्वरूप कहिए है —

केई जीव तौ यहु केवली भगवानकी वानी है, तातैं केवली के पूज्य होनेतैं यहु भी पूज्य है, ऐसा जानि भक्ति करै हैं । बहुरि केई ऐसै परीक्षा करै हैं—इन शास्त्रनिविषै विरागता दया क्षमा शील संतोषादिकका निरूपण है, तातैं ए उत्कृष्ट हैं, ऐसा जानि भक्ति करै है । सो ऐसा कथन तौ अन्य शास्त्र वेदान्तिक तिनविषै भी पाइए है । बहुरि इन शास्त्रनिविषैं त्रिलोकादिकका गम्भीर निरूपण है । तातैं उत्कृष्टता जानि भक्ति करै हैं । सो इहां अनुमानादिकका तौ प्रवेश नाहीं । सत्य असत्यका निर्णय करि महिमा कैसैं जानिए । तातैं ऐसै सांची परीक्षा होय नाहीं । इहां अनेकांतरूप सांचा जीवादितत्त्वनिका निरूपण है । अर सांचा रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग दिखाया है । ताकरि जैनशास्त्रनिकी उत्कृष्टता है । ताकौं नाहीं पहिचानै हैं । जातैं यहु पहिचानि भए मिथ्यादृष्टि रहै नाहीं । ऐसैं शास्त्रभक्तिका स्वरूप कह्या ।

, या प्रकार याकै देव गुरुशास्त्रकी प्रतीति भई, तातैं व्यवहारसम्यक्त्व भया मानै है। परन्तु उनका साचा स्वरूप भास्या नाहीं। तातैं प्रतीति भी साची भई नाहीं। सांची प्रतीतिबिना सम्यक्तकी प्राप्ति नाहीं। तातैं मिथ्यादृष्टी ही है। बहुरि शास्त्रविषै 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' [तत्त्वा० सू० १ २] ऐसा वचन कह्या है। तातैं जैसैं शास्त्रनिविषैं जीवादि तत्त्व लिखे हैं, तैसैं आप सीखिले है। तहां उपयोग लगावै है। औरनिकौं उपदेशै है, परन्तु तिन तत्त्वनिका भाव भासता नाहीं। अर इहां तिस वस्तुके भावहीका नाम तत्त्व कह्या। सो भाव भासै विना तत्त्वार्थश्रद्धान कैसैं होय? भावभासना कहा? सो कहिए है:—

जैसे कोऊ पुरुष चतुर होनेके अर्थि शास्त्रकरि स्वर ग्राम मूर्छना रागनिका रूप ताल तानके भेद तिनिकौं सीखै है। परंतु स्वरादिकका स्वरूप नाहीं पहिचानै है। स्वरूपपहिचानि भए विना अन्य स्वरादिककौं अन्य स्वरादिकरूप मानै है वा सत्य भी मानै है, तौ निर्णयकरि नाहीं मानै है। तातैं वाकै चतुरपनौ होय नाहीं। तैसैं कोऊ जीव सम्यक्ती होनेकै अर्थि शास्त्रकरि जीवादिक तत्त्वनिका स्वरूपकौं सीखै है। परन्तु तिनका स्वरूपकौं नाहीं पहिचानै है। स्वरूप पहिचानैं विना अन्य तत्त्वनिकौं अन्य तत्त्वरूप मानि ले है। वा सत्य भी मानै है, तौ निर्णयकरि नाहीं मानै है। तातैं वाकै सम्यक्त्व होय नाहीं। बहुरि जैसे कोई शास्त्रादिपढ्या है, वा न पढ्या है, जो

कौं पहिचानै है, तौ वह चतुर ही है। तैसें शास्त्र पढ्या है, वा न पढ्या है जो जीवादिकका स्वरूप पहिचानै है, तौ वह सम्यग्दृष्टी ही है जैसें हिरण स्वर रागादिकका नाम न जानै है, अर ताका स्वरूपकौं पहिचानै है तैसें तुच्छबुद्धि जीवादिकका नाम न जानै है, अर तिनका स्वरूपकौं पहिचानै है। यहु मैं हौं, यह पर है, ए भाव बुरे है, ए भले है, ऐसैं स्वरूप पहिचानै ताका नाम भाव भासना है। शिवभूति [१] मुनि जीवादिकका नाम न जानें था, अर "तुषमाषभिन्न" ऐसा घोषने लगा, सो यहु सिद्धान्तका शब्द था नाहीं परन्तु आपा परका भावरूप ध्यान किया, तातैं केवली भया। अर ग्यारह अंगके पाठी जीवादितत्त्वनिका विशेषभेद जानै, परन्तु भासै नाहीं, तातैं मिथ्यादृष्टी ही रहै है। अब याकै तत्त्वश्रद्धान किस प्रकार हो है, सो कहिए है—

जिनशास्त्रनिविषै कहे जीवके त्रस स्थावरादिरूप वा गुणस्थानमार्गणादिरूप भेदनिकौं जानै है, अर अजीवके पुद्गलादि भेदनिकौं वा तिनके वर्णादि विशेषनिकौं जानै है। परन्तु अध्यात्मशास्त्रनिविषै भेदविज्ञानकौं कारणभूत वा वीतरागदशा होनेका कारणभूत जैसैं निरूपण किया है, तैसें न जानै है बहुरि किसी प्रसंगतैं तैसें भी जानना होय, तौ शास्त्र अनुसारि

१ तुसमास घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडो जाओ ॥ —भावपा० ५३ ॥

जानि तो ले है। परन्तु आपकौं आप जानि परका अंश भी न मिलावना अर आपका अंश भी परविषै न मिलावना, ऐसा सांचा श्रद्धान नाहीं करै है। जैसैं अन्य मिथ्यादृष्टी निर्धारबिना पर्यायबुद्धिकरि जानपनाविषै वा वर्णादिविषै अहंबुद्धि धारै हैं, तैसैं यहु भी आत्माश्रित ज्ञानादिविषै वा शरीराश्रित उपदेश उपवासादि क्रियानिविषै आपो मानै है बहुरि शास्त्रकै अनुसार कबहूं सांची बात भी बनावै, परन्तु अंतरंग निर्धाररूप श्रद्धान नाहीं। तातैं जैसैं मतवाला माताकौं माता भी कहै, तो स्याना नाहीं। तैसें याकौ सम्यक्ती न कहिए। बहुरि जैसैं कोई औरहीकी बातैं करता होय, तैसें आत्माका कथन करै, परंतु यहु आत्मा मैं हौं, ऐसा भाव नाहीं भासै बहुरि जैसैं कोई औरकू औरतैं भिन्न बतावता होय, तैसें आत्मा शरीरकी भिन्नता प्ररूपै। परन्तु मैं इन शरीरादिकतैं भिन्न हौं, ऐसा भाव भासै नाहीं। बहुरि पर्यायविषै जीव पुद्गलकै परस्पर निमित्ततैं अनेक क्रिया हो है, तिनकौं दोय द्रव्यका मिलापकरि निपजी जानै। यहु जीवकी क्रिया है, ताका पुद्गल निमित्त है, यहु पुद्गलकी क्रिया है, ताका जीव निमित्त है, ऐसा भिन्न भिन्न भाव भासै नाहीं। इत्यादि भाव भासे बिना जीव अजीवका सांचा श्रद्धानी न कहिए। तातैं जीव अजीव जाननेका तो यह ही प्रयोजन था, सो भया नाहीं। बहुरि आस्रवतत्त्वविषै जे हिंसादिरूप पापास्रव हैं, तिनकौं हेय जानै है। अहिंसादिरूप पुण्यास्रव है तिनकौं

उपादेय माने है। सो ए तौ दोऊ ही कर्मबंधके कारण इनि
उपादेयपनौं, माननौं, सोई मिथ्यादृष्टी है। सोही समयसा
बंधाधिकारविषै कह्या है *—

सर्व जीवनिकै जीवन मरण सुख दुःख अपने कर्मके नि
त्तैं हो है। जहां अन्य जीव अन्य जीवकै इन कार्यनिका क
होय, सोई मिथ्याध्यवसाय बंधका कारण है १। तहां अ
जीवनिकौ जिवावनेका वा सुखी करनेका अध्यवसाय होय,
तौ पुण्यबंधका कारण है, अर मारनेका अध्यवसाय होय,
पापबंधका कारण है। ऐसे अहिंसावत सत्यादिक तौ पुण्यबं
कारण हैं, अर हिंसावत् असत्यादिक पापबंधकौं कारण है
सर्व मिथ्याध्यवसाय हैं, ते त्याज्य हैं। तातैं हिंसादिवत् अहिं
दिककौं भी बंधका कारण जानि हेय ही मानना। हिंसा
मारनेकी बुद्धि होय, सो वाका आयु पूरा हुवा विना मरै ना

*समयसार गा० २५४ से २५६।

१—सर्व सदैव नियतं भवति स्वकीय
कर्मोदयान्मरण जीवित दुःखसौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु पर परस्य
कुर्यात्पुमान् मरण जीवित दुःख सौख्यम् ॥ ६ ॥
अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य
पश्यन्ति ये मरण जीवित दुःख सौख्यम्।
कर्माण्यहङ्कृतिरसेन चिकीर्षवस्ते,
मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति ॥ ७ ॥

समयसार कलश, ८ अधिकार

अपनी द्वेषपरणतिकरि आप ही पाप बाँधै है। अहिंसाविषैं रक्षाकरनेकी बुद्धि होय, सो वाका आयु अवशेषबिना जीवै नाहीं, अपनी प्रशस्त रागपरणतिकरि आप ही पुण्य बाँधै है। ऐसैं ए दोऊ हेय हैं। जहां वीतराग होय दृष्टा ज्ञाता प्रवर्तै, तहां निर्बंध है। सो उपादेय है। सो ऐसी दशा न होइ, तावत् प्रशस्त रागरूप प्रवर्तो। परन्तु श्रद्धान तौ ऐसा राखौ—यहु भी बंधका कारण है—हेय है। श्रद्धानविषैं याकौं मोक्षमार्ग जानैं मिथ्यादृष्टी ही है।

बहुरि मिथ्यात्व अविरत कषाय योग ए आस्रवके भेद हैं, तिनकौं बाह्यरूप तौ मानैं, अंतरंग इन भावनिकी जातिकौं पहिचानैं नाहीं। अन्य देवादिकसेवनेरूप गृहीतमिथ्यात्वकौं मिथ्यात्व जानैं, अर अनादि अगृहीतमिथ्यात्व है, ताकौं न पहिचानैं। बहुरि बाह्य त्रसस्थावरकी हिंसा वा इन्द्रिय मनके विषयनिविषैं प्रवृत्ति ताकौं अविरत जानैं। हिंसाविषैं प्रमादपरणति मूल है, अर विषयसेवनविषैं अभिलाष मूल है, ताकौं न अवलोकै। बहुरि बाह्य क्रोधादि करना, ताकौं कषाय जानैं, अभिप्रायविषैं रागद्वेष बसै ताकौं न पहिचानैं। बहुरि बाह्य चेष्टा होय, ताकौं योग जानैं, शक्तिभूत योगनिकौं न जानैं। ऐसे आस्रवनिका स्वरूप अन्यथा जानै, बहुरि राग द्वेष मोहरूप जे आस्रवभाव हैं, तिनका तौ नाश करनेकी चिंता नाहीं। अर बाह्यक्रिया वा बाह्य निमित्त मेटनेका उपाय राखै, सो तिनके मेटे आस्रव

नाहीं। द्रव्यलिंगीमुनि अन्य देवादिककी सेवा न करै है, हिंसा वा विषयनिविषै न प्रवर्त्तै है, क्रोधादि न करै है, मन वचन कायकौं रोकै है, तौ भी वाकै मिथ्यात्वादि च्यारों आस्रव पाईए है। बहुरि कपटकरि भी ए कार्य न करै है। कपटकरि करै, तौ ग्रैवेयक पर्यंत कैसे पहुचै। तातैं जो अंतरंग अभिप्रायविषै मिथ्यात्वादिरूप रागादिभाव है, सोही आस्रव है। ताकौं न पहिचानै, तातैं याकै आस्रवतत्त्वका भी सत्य श्रद्धान नाहीं। बहुरि बंधतत्त्वविषै जे अशुभभावनिकरि नरकादिरूप पापका बंध होय, ताकौं तौ बुरा जानै अर शुभभावनिकरि देवादि रूप पुण्यका बंध होय, ताकौं भला जानै। सो सर्व ही जीवनिकै दुखसामग्रीविषै द्वेष, सुखसामग्रीविषै राग पाईए है, सो ही याकै राग द्वेष करनेका श्रद्धान भया। जैसा इस पर्यायसंबंधी सुखदुख-सामग्रीविषै राग द्वेष करना, तैसा ही आगामी पर्यायसंबंधी सुखदुखसामग्रीविषै राग द्वेष करना। बहुरि शुभअशुभभावनिकरि पुण्यपापका विशेष तौ अघाति कर्मनिविषै हो है। सो अघाति कर्म आत्मगुणके घातक नाहीं। बहुरि शुभ अशुभ भावनिविषै घातिकर्मनिका तौ निरंतरबंध होय ते सर्व पापरूप ही हैं अर तेई आत्मगुणके घातक हैं, तातैं अशुद्ध भावनिकरि कर्मबंध होय, तिसविषै भला बुरा जानना सोई मिथ्याश्रद्धान है। सो ऐसे श्रद्धानतैं बंधका भी याकै सत्यश्रद्धान नाहीं। बहुरि संवरतत्त्वविषै अहिंसादिरूप शुभास्रव भाव तिनकौं संवर जानै है। सो

एक कारणतैं पुण्यबंध भी मानै अर संवर भी मानै, सो बनै नाहीं।

**[एक भक्तिभावसे आश्रव बंध सम्वर निर्जराकी सिद्धि]**

यहां प्रश्न—जो मुनिनिकैं एक काल एकभाव हो है। तहां उनकै बंध भी हो है अर संवर निर्जरा भी हो है, सो कैसें है?

ताका समाधान—वह भाव मिश्ररूप है। किछू वीतराग भया है किछू सराग रह्या है। जे अंश वीतराग भए तिनकरि संवर है अर जे अंश सराग रहे, तिनकरि बंध है। सो एकभावतैं तौ दोय कार्य बनैं, परन्तु एक प्रशस्तरागहीतैं पुण्यास्रव भी मानना अर संवरनिर्जरा भी मानना सो भ्रम है। मिश्रभावविषैं भी यहु सरागता है, यहु विरागता है, ऐसी पहचानि सम्यग्दृष्टीहीकै होय। तातैं अवशेष सरागताकौं हेय श्रद्दहै है। मिथ्यादृष्टीकै ऐसी पहचानि नाहीं तातैं सरागभाव विषैं संवरका भ्रमकरि प्रशस्त रागरूप कार्यनिकौं उपादेय श्रद्दहै है। बहुरि सिद्धान्तविषैं गुप्ति समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषह जय चारित्र इनकरि संवर हो है, ऐसा कह्या १ है। सो इनकौं भी यथार्थ न श्रद्दहै है। कैसें, सो कहिए है —

बाह्य मन वचन कायकी चेष्टा मेटैं पापचिंतवन न करै मौन धरै, गमनादि न करै, सो गुप्ति मानै है सो यहां तौ मनविषैं भक्ति आदिरूप प्रशस्तरागादि नानाविकल्प हो है

१ सगुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः।

कायकी चेष्टा आप रोकि राखी है, तहां शुभप्रवृत्ति है, अर प्रवृत्तिविषै गुप्तितो बनै नाहीं। तातैं वीतरागभाव भए जहां मन वचन कायकी चेष्टा न होय, सो ही सांची गुप्ति गुप्ति है। बहुरि परजीवनिकी रक्षाकै अर्थ यत्नाचारप्रवृत्ति ताकौं समिति मानैं हैं। सो हिंसाके परिणामनितैं तौ पाप हो है, अर रक्षाके परिणामनितैं संवर कहोगे, तौ पुण्यबंधका कारण कौन ठहरैगा। बहुरि एषणासमितिविषै दोष टालै है। तहां रक्षाका प्रयोजन है नाहीं। तातैं रक्षाहीकै अर्थ समिति नाहीं है। तौ समिति कैसैं हो है—मुनिनिकै किंचित् राग भए गमनादि क्रिया हो है। तहां तिन क्रियानिविषै अति आसक्तताके अभावतैं प्रमादरूप प्रवृत्ति न हो है। बहुरि और जीवनिकौं दुखी करि अपना गमनादि प्रयोजन न साधै है। तातैं स्वयमेव ही दया पलै है। ऐसैं सांचा समिति है। बहुरि बंधादिकके भयतैं वा स्वर्गमोक्षकी चाहितैं क्रोधादि न करै है, सो यहां क्रोधादिकरनेका अभिप्राय तौ गया नाहीं। जैसैं कोई राजादिकका भयतैं वा महंतपनाका लोभतैं परस्त्री न सेवै है, तौ वाकौं त्यागी न कहिए। तैसैं ही यहु क्रोधादिका त्यागी नाहीं। तौ कैसैं त्यागी होय। पदार्थ अनिष्ट इष्ट भासि क्रोधादि हो है। जब तत्त्वज्ञानके अभ्यासतैं कोई इष्ट अनिष्ट न भासै, तब स्वयमेव ही क्रोधादिक न उपजै, तब सांचा धर्म हो है। बहुरि अनित्यादि चिंतवनतैं शरीरादिकको बुरा जानि हितकारी न जानि तिनतैं उदास होना ताका

नाम अनुप्रेक्षा कहै हैं। सो यहु तौ जैसे कोऊ मित्र था, तब उसतैं राग था, पीछैं वाका अवगुण देखि उदासीन भया, तैसें शरीरादिकतैं राग था पीछैं अनित्यत्वादि अवगुण अवलोकि उदासीन भया। सो ऐसी उदासीनता तो द्वेषरूप है। जहां जैसा अपना वा शरीरादिकका स्वभाव है, तैसा पहचानि भ्रमकौं मेटि भला जानि राग न करना, बुरा जानि द्वेष न करना, ऐसी सांची उदासीनताकै अर्थि यथार्थ अनित्यत्वादिकका चितवन सोई सांची अनुप्रेक्षा है।

बहुरि क्षुधादिक भए तिनकै नाशका उपाय न करना, ताकौं परीषह सहना कहै हैं। सो उपाय तौ न किया, अर अंतरंग क्षुधादि अनिष्ट सामग्री मिले दुखी भया, रति आदिका कारण मिले सुखी भया, तौ सो दुख सुखरूप परिणाम हैं, सोई आर्त्तध्यान रौद्रध्यान है। ऐसे भावनितैं संवर कैसे होय? तातैं दुखका कारण मिले दुखी न होय, सुखका कारण मिले सुखी न होय, ज्ञेयरूपकरि तिनिका जाननहारा ही रहै, सोई सांचा परीषहका सहना है।

बहुरि हिंसादि सावद्ययोगका त्यागकौं चारित्र मानै हैं। तहां महाव्रतादिरूप शुभयोगकौं उपादेयपनेकरि ग्रहण मानै हैं। सो तत्त्वार्थसूत्रविषै आस्रव पदार्थका निरूपण करतें महाव्रत अणुव्रत भी आस्रवरूप कहे हैं। ए उपादेय कैसे होय? अर आस्रव तौ बंधका साधक है, चारित्र मोक्षका साधक है तातैं

रूप आस्रवभावनिकौं चारित्रपनौं संभवै नाहीं। सकल कषाय रहित जो उदासीनभाव ताहीका नाम चारित्र है। जो चारित्र मोहके देशघाती स्पर्द्धकनिके उदयतैं महामंद प्रशस्त राग हो है, सो चारित्रका मल है। याकौं छूटता न जानि याका त्याग न करै है, सावद्ययोग ही का त्याग करै है। परन्तु जैसे कोई पुरुष कंदमूलादि बहुत दोषीक हरितकायका त्याग करै है, अर केई हरितकायनिकौं भखै है। परन्तु ताकौं धर्म न मानै है। तैसे मुनि हिंसादि तीव्रकषायरूप भावनिका त्याग करै है, अर केई मंदकषायरूप महाव्रतादिकौं पालैं हैं, परन्तु ताकौं मोक्षमार्ग न मानै है।

यहां प्रश्न—जो ऐसैं है, तौ चारित्रके तेरह भेदनिविषैं महाव्रतादि कैसे कहे हैं?

ताका समाधान—यहु व्यवहारचारित्र कह्या है। व्यवहार नाम उपचारका है। सो महाव्रतादि भए ही वीतरागचारित्र हो है। ऐसा संबंध जानि महाव्रतादिविषैं चारित्रका उपचार किया है। निश्चयकरि निःकषाय भाव है, सोई सांचा चारित्र है। या प्रकार संवरके कारणनिकौं अन्यथा जानता संवरका सांचा श्रद्धानी न हो है।

बहुरि यहु अनशनादि तपतैं निर्जरा मानै है। सो केवल बाह्यतप ही तौ किए निर्जरा होय नाहीं। बाह्यतप तौ शुद्धोपयोग बधावनेके अर्थि कीजिए है। शुद्धोपयोग निर्जराका कारण

है। तातैं उपचारकरि तपकौं भी निर्जराका कारण कह्या है। जो बाह्य दुख सहना ही निर्जराका कारण होय, तौ तिर्यंचादि भी भूख तृषादि सहै हैं।

तब वह कहै है वे तौ पराधीन सहै हैं, स्वाधीनपनै धर्म-रूप बुद्धितैं उपवासादि तप करै, ताकै निर्जरा हो है?

ताका समाधान—धर्मबुद्धितैं बाह्य उपवासादिक तौ किए, बहुरि तहां उपयोग अशुभ शुभ शुद्धरूप जैसें परिणमैं तैसें परि-णमो। घनें उपवासादि किए घनी निर्जरा होय, थोरे किए थोरी निर्जरा होय। जो ऐसें नियम ठहरै, तौ उपवासादिक ही मुख्य निर्जराका कारण ठहरै। सो तौ बनै नाहीं। परिणाम दुष्ट भए उपवासादिकतैं निर्जरा होनी कैसें संभवै? बहुरि जो कहिए-जैसा अशुभ शुभ शुद्धरूप उपयोग परिणमै, ताकै अनुसार बंध निर्जरा है। तौ उपवासादि तप मुख्य निर्जराका कारण कैसें रह्या? अशुभ शुभ परिणाम बंधके कारण ठहरे, शुद्ध परिणाम निर्जराके कारण ठहरे।

यहां प्रश्न—जो तत्त्वार्थसूत्रविषैं "तपसा निर्ज्जरा च" [ ९-३ ] ऐसा कैसे कह्या है?

ताका समाधान—शास्त्रविषैं "इच्छानिरोधस्तपः" कह्या है। इच्छाका रोकना ताका नाम तप है। सो ... इच्छा मिटे उपयोग शुद्ध होय, तां निर्जरा हो है। निर्जरा कह्यो है।

यहां कोऊ कहै, आहारादिरूप अशुभकी तौ इच्छा दूरि भए ही तप होय। परंतु उपवासादिक वा प्रायश्चित्तादि शुभ कार्य हैं, तिनकी इच्छा तौ रहै ?

ताका समाधान—ज्ञानी जननिकैउपवासादिकी इच्छा नाहीं है, एक शुद्धोपयोग की इच्छा है। उपवासादि किए शुद्धोपयोग बधै है, तातै उपवासादि करै हैं। बहुरि जो उपवासादिकतैं शरीरकी वा परिणामनिकी शिथिलताकरि शुद्धोपयोग शिथिल होता जानै, तहां आहारादिक ग्रहै है। जो उपवासादिकहीतैं सिद्धि होय, तौ अजितनाथादिक तेईस तीर्थंकर दीक्षा लेय दोय उपवास ही कैसे धरते ? उनकी तौ शक्ति भी बहुत थी। परंतु जैसे परिणाम भए तैसे बाह्य साधन करि एक वीतराग शुद्धोपयोगका अभ्यास किया।

यहां प्रश्न—जो ऐसे हैं, तौ अनशनादिककौ तपसंज्ञा कैसे भई ?

ताका समाधान—इनिका बाह्यतप कहै हैं। सो बाह्यका अर्थ यहु, जो बाह्य औरनिका दीसै यहु तपस्वी है। बहुरि आप तौ फल जैसा अंतरंग परिणाम होगा तैसा ही पावैगा। जातैं परिणामशून्य शरीरकी क्रिया फलदाता नाहीं।

बहुरि यहां प्रश्न—जो शास्त्रविषै तौ अकामनिर्जरा कही है। तहां विना चाहि भूख तृषादि सहे निर्जरा हो है। तौ उपवासादिकरि कष्ट सहैं कैसे निर्जरा न होय ?

ताका समाधान—अकामनिर्जराविषैं भी बाह्य निमित्त तौ बिना चाहि भूख तृषाका सहना भया है। अर तहाँ मंदकषाय रूप भाव होय, तौ पापकी निर्जरा होय, देवादि पुण्यका बंध होय। अर जो तीव्रकषाय भए भी कष्ट सहे पुण्यबंध होय, तौ सर्व तिर्यंचादिक देव ही होंय। सो बनै नाहीं। तैसैं ही चाहि करि उपवासादि किए तहाँ भूख तृषादि कष्ट सहिए है। सो यहु बाह्य निमित्त है। यहाँ जैसा परिणाम होय, तैसा फल पावै है। जैसैं अन्नकौं प्राण कह्या। बहुरि ऐसैं बाह्यसाधन भए अंतरंगतपकी वृद्धि हो है। तातैं उपचारकरि इनकौं तप कहे हैं। जो बाह्य तप तौ करै अर अंतरंग तप न होय, तौ उपचारतैं भी याकौं तपसंज्ञा नाहीं। सोई कह्या है—

कषायविषयाहारत्यागो यत्र विधीयते।
उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः॥

जहाँ कषाय विषय आहारका त्याग कीजिए, सो उपवास जानना। अवशेषकौं लंघन श्रीगुरु कहै हैं।

यहाँ कहैगा, जो ऐसैं है, तौ हम उपवासादि न करेंगे?

ताकौं कहिए है—उपदेश तौ ऊंचा चढनेकौं दीजिए है तू उलटा नीचा पडैगा, तौ हम कहा करेंगे। जो तू मानादिकतैं उपवासादि करै है, तौ करि, वा मति करै, किछू सिद्धि नाहीं। अर जो धर्मबुद्धितैं आहारादिकका अनुराग छोडै है, तौ

राग छूट्या, तेता ही छूट्या। परन्तु इसहीकौं तप जानि इस
निर्जरा मानि सतुष्ट मति होहु। बहुरि अतरङ्ग तपनिविषै प्राय
श्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, त्याग, ध्यानरूप जो क्रिय
ताविषै बाह्य प्रवर्त्तन सो तौ बाह्य तपवत् ही जानना जैसें अन
शनादि बाह्य क्रिया हैं, तैसें ए भी बाह्य क्रिया हैं। तातैं प्राय
श्चित्तादि बाह्य साधन अतरङ्ग तप नाहीं है। ऐसा बाह्य प्रवर्त्त
होत, जो अतरङ्ग परिणामनिकी शुद्धता होय, ताका नाम अत
रङ्ग तप जानना। तहां भी इतना विशेष है बहुत शुद्धता भए
शुद्धोपयोगरूप परिणति होइ, तहां तौ निर्जरा ही है, बध नाहीं
हो है। अर स्तोक शुद्धता भए शुभोपयोगका भी अश रहै, तौ
जेती शुद्धता भई ताकरि तौ निर्जरा है। अर जेता शुभ भाव है
ताकरि बध है। ऐसा मिश्रभाव युगपत् हो है, तहां बध व
निर्जरा दोऊ हो हैं।

यहां कोऊ कहै, शुभ भावनितैं पापकी निर्जरा हो है, पुण्यक
बध हो है, शुद्ध भावनितैं दोऊनिकी निर्जरा हो है, ऐसा क्यों
न कहौ?

ताका उत्तर—मोक्षमार्गविषैं स्थितिका तौ घटना सर्व हीं
प्रकृतिनिका होय। तहां पुण्यपापका विशेष है ही नाहीं। अ
अनुभागका घटना पुण्यप्रकृतिनिका शुद्धोपयोगतैं भी होत
नाहीं। ऊपरि ऊपरि पुण्यप्रकृतिनिकै अनुभागका तीव्र बध उद
हो है, अर पापप्रकृतिके परमाणु पलटि शुभप्रकृतिरूप होय ऐस

संक्रमण शुभ शुद्ध दोऊ भाव होतैं होय। तातैं पूर्वोक्त नियम संभवै नाहीं। विशुद्धताहीकै अनुसारि नियम संभवै है। देखो, चतुर्थगुणस्थानवाला शास्त्राभ्यास आत्मचिंतवनादि कार्य करै, तहां भी निर्जरा नाहीं, बंध भी घना होय। अर पंचमगुणस्थानवाला विषय सेवनादि कार्य करै तहां भी वाकै गुणश्रेणि निर्जरा हुआ करै बंध भी थोरा होय। बहुरि पंचमगुणस्थानवाला उपवासादि वा प्रायश्चित्तादि तप करै, तिस कालविषै भी वाकै निर्जरा थोरी, अर छठागुणस्थानवाला आहार विहारादि क्रिया करै, तिस कालविषै भी वाकै निर्जरा घनी। वाकै भी बंध थोरा होय तातैं बाह्य प्रवृत्तिकै अनुसारि निर्जरा नाहीं है। अंतरंग कषायशक्ति घटैं विशुद्धता भए निर्जरा हो है। सो इसका प्रकट स्वरूप आगैं निरूपण करेंगे, तहां जानना। ऐसैं अनशनादि क्रियाकौं तपसंज्ञा उपचारतैं जाननी। याहीतैं इनकौं व्यवहार तप कह्या है। व्यवहार उपचारका एक अर्थ है। बहुरि ऐसा साधनतैं जो वीतरागभावरूप विशुद्धता होय, सो सांचा तप निर्जरा कारण जानना। यहां दृष्टान्त— जैसैं धनकौं वा अन्नकौं प्राण कह्या। सो धनतैं अन्न ल्याय भक्षण किए प्राण पोषे जांय, तातैं धन अन्नकौं प्राण कह्या। कोई इंद्रियादिक प्राणनिकौं न जानैं, अर इनहीकौं प्राण जानि संग्रह करै, तौ मरण ही पावै। तैसैं अनशनादिकौं वा प्रायश्चित्तादिकौं तप कह्या। अनशनादि साधनतैं प्रायश्चित्तादिरूप प्रवर्तै

तप पोष्या जाय। तातैं उपचारकरि अनशनादिकौं वा प्रायश्चित्तादिकौं तप कह्या। कोई वीतरागभावरूप तपकौं न जानैं अर इनिहीकौं तप जानि संग्रह करै, तौ संसारहीमैं भ्रमै। बहुत कहा, इतना समझि लैंना—निश्चय धर्म्मतौ वीतरागभाव है। अन्य नाना विशेष बाह्यसाधन अपेक्षा उपचारतैं किए हैं, तिनकौं व्यवहारमात्र धर्मसंज्ञा जाननी। इस रहस्यकौं न जानैं, तातैं वाकै निर्जराका भी सांचा श्रद्धान नाहीं है।

बहुरि सिद्ध होना ताकौं मोक्ष मानै है। बहुरि जन्म जरा मरण रोग क्लेशादि दुख दूरि भए अनतज्ञान करि लोकालोकका जानना भया, त्रिलोकपूज्यपना भया, इत्यादि रूपकरि ताकी महिमा जानै है। सो सर्व जीवनिकै दुख दूर करनेकी वा ज्ञेय जाननेंकी वा पूज्य होनेकी चाहि है। इनिहीके अर्थ मोक्षकी चाहि कीनी, तौ यानैं और जीवनिका श्रद्धानतैं कहा विशेषता भई। बहुरि याकै ऐसा भी अभिप्राय है—स्वर्गविषै सुख है, तिनितैं अनतगुणौ मोक्षविषैं सुख है। सो इस गुणकारविषै स्वर्ग मोक्ष सुखकी एक जाति जानै है। तहां स्वर्गविषै तौ विषयादि सामग्रीजनित सुख हो है, ताकी जाति याकौं भासै है अर मोक्षविषैं विषयादि सामग्री है नाहीं, सो वहांका सुखकी जाति याकौं भासै तौ नाहीं, परन्तु स्वर्गतै भी मोक्षकौं उत्तम महापुरुष कहै हैं, तातैं यहु भी उत्तम ही मानै है। जैसैं कोऊ गानका स्वरूप

न पहिचानैं, परन्तु सर्व ममाके सराहैं, तातैं आप भी सराहै है। तैसैं यहु मोक्षकौं उत्तम मानै है।

बहुरि वह कहै है—शास्त्रविषैं भी तौ इन्द्रादिकतैं अनतगुणा सुख सिद्धनिकै प्ररूपै हैं?

ताका उत्तर—जैसैं तीर्थंकरके शरीरकी प्रभाकौं सूर्यप्रभातैं कोट्या गुणी कही। तहा तिनकी एक जाति नाहीं। परन्तु लोकविषैं सूर्यप्रभाको महिमा है, तातैं भी बहुत महिमा जनावनेकौं उपमालंकार कीजिए है। तैसैं सिद्धसुखकौं इन्द्रादिसुखतैं अनतगुणा कह्या। तहा तिनकी एक जाति नाहीं। परन्तु लोकविषैं इन्द्रादिसुखकी महिमा है, तातैं भी बहुत महिमा जनावनेकौं उपमालंकार कीजिए है।

बहुरि प्रश्न—जो सिद्धसुख अर इन्द्रादिसुखकी एक जाति वह जानै है ऐसा निश्चय तुम कैसैं किया?

ताका समाधान—जिस धर्मसाधनका फल स्वर्ग मानै है, तिस धर्मसाधनहीका फल मोक्ष मानै है। कोई जीव इन्द्रादिपद पावै, कोई मोक्ष पावै, तहा तिन दोऊनिकै एक जाति धर्मका फल भया मानै। ऐसा तौ मानै, जा जाकैं साधन थोरा हो है, सो इन्द्रादिपद पावै है, जाकै सपूर्ण साधन होय, सो मोक्ष पावै है। परन्तु तहाँ धर्मकी जाति एक जानै है। सो जो कारणकी एक जाति जानै, ताकौं कार्यकी भी एक जातिका श्रद्धान अवश्य होय। जातैं कारणविशेष भए ही कार्य विशेष हो है।

यहु निश्चय किया, वाकै अभिप्रायविषै इंद्रादिसुख अर सिद्धसुखकी एक जातिका श्रद्धान है। बहुरि कर्मनिमित्ततैं आत्माकै औपाधिक भाव थे, तिनका अभाव होतैं शुद्धस्वभावरूप केवल आत्मा आप भया। जैसैं परमाणु स्कंधतै बिछुरैं शुद्ध हो है, तैसैं यहु कर्मादिकतैं भिन्न होए शुद्ध हो है। विशेष इतना यह दोऊ अवस्थाविषै दुखी सुखी नाहीं, आत्मा अशुद्ध अवस्थाविषै दुखी था, अब ताके अभाव होनेतैं निराकुललक्षण अनंतसुखकी प्राप्ति भई। बहुरि इंद्रादिकनिकै जो सुख है, सो कषायभावनिकरि आकुलतारूप है। सो वह परमार्थतैं दुखी ही है। तातैं वाकी याकी एकजाति नाहीं। बहुरि स्वर्गसुखका कारण प्रशस्तराग है, मोक्षसुखका कारण वीतरागभाव है, तातैं कारणविषै भी विशेष है। सो ऐसा भाव याकै भासै नाहीं। तातैं मोक्षका भी याकै सांचा श्रद्धान नाहीं है। या प्रकार याकै सांचा तत्त्वश्रद्धान नाहीं है। इसही वास्तै समयसारविषै[1] कह्या है—"अभव्यकै तत्त्वश्रद्धान भए भी मिथ्यादर्शन ही रहै है।" वा प्रवचनसारविषै[2] कह्या है—"आत्मज्ञानशून्य तत्त्वार्थश्रद्धान कार्यकारी नाहीं।"

बहुरि यहु व्यवहारदृष्टिकरि सम्यग्दर्शनके आठ अंग कहे

---

१ सद्दहदि य पत्तेदि य रोचदि य तह पुणो य फासेदि।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥ २७५ ॥

२ अत आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान संयतत्वयौगपद्यमप्य-किंचित्करमेव ॥ ३ ३९ ॥

हैं, तिनिकौं पाले है। पचीस दोष कहे हैं, तिनिकौं टालै है। संवेगादिक गुण कहे हैं, तिनिकौं धारै है। परंतु जैसैं बीज बोए बिना खेतका सब साधन किए भी अन्न होता नाहीं, तैसैं सांचा तत्त्वश्रद्धान भए बिना सम्यक्त होता नाहीं। सो पचास्तिकाय-व्याख्याविषैं जहां अंतविषै व्यवहाराभासवालेका वर्णन किया है, तहां ऐसा ही कथन किया है। या प्रकार याकै सम्यग्दर्शनके अर्थि साधन करतैं भी सम्यग्दर्शन न हो है।

## [ सम्यग्ज्ञानका अन्यथा स्वरूप ]

अब यहु सम्यग्ज्ञानकै अर्थि शास्त्रविषै शास्त्राभ्यास किए सम्यग्ज्ञान होना कहा है, तातैं जो शास्त्राभ्यासविषैं तत्पर रहै हैं, तहां सीखना सिखावना, यादि करना, वाचना, पढ़ना आदि क्रियाविषै तौ उपयोगकौं रमावै है। परन्तु वाकै प्रयोजन ऊपरि दृष्टि नाहीं है। इस उपदेशविषै मुझकौं कार्यकारी कहा, सो अभिप्राय नाहीं। आप शास्त्राभ्यासकरि औरनिकौं संबोधन देनेका अभिप्राय राखै है। घने जीव उपदेश मानैं तहां संतुष्ट हो है। सो ज्ञानाभ्यास तौ आपकै अर्थि कीजिए है और प्रसग पाय परका भी भला होय तौ परका भी भला करै। बहुरि कोई उपदेश न सुनै, तौ मति सुनौ, आप काहेकौं विषाद कीजिए। शास्त्रार्थका भाव जानि आपका भला करना। बहुरि शास्त्राभ्यासविषै भी केई तौ व्याकरण न्याय काव्य आदि

बहुत अभ्यास हैं। सो ए तौ लोकविषै पंडितता प्रकट करनेके कारण हैं। इनविषैं आत्महितनिरूपण तौ है नाहीं इनिका तौ प्रयोजन इतना ही है। अपनी बुद्धि बहुत होय, तौ थोरा बहुत इनका अभ्यासकरि पीछैं आत्महितके साधक शास्त्र तिनिका अभ्यास करना। जो बुद्धि थोरी होय, तौ आत्महितके साधक सुगम शास्त्र तिनहीका अभ्यास करै। ऐसा न करना, जो व्याकरणादिकका ही अभ्यास करत करत आयु पूरा होय जाय, अर तत्वज्ञानकी प्राप्ति न बनै।

यहां कोऊ कहै—ऐसैं है तौ व्याकरणादिकका अभ्यास न करना। ताकौं कहिए है—

तिनका अभ्यासबिना महान् ग्रंथनिका अर्थ खुलै नाहीं। तातैं तिनका भी अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि यहां प्रश्न—महान् ग्रंथ ऐसे क्यों किए, जिनका अर्थ व्याकरणादि बिना न खुलै। भाषाकरि सुगमरूप हितोपदेश क्यों न लिख्या। उनकै किछू प्रयोजन तौ था नाहीं ?

ताका समाधान—भाषाविषै भी प्राकृत संस्कृतादिकके ही शब्द हैं। परन्तु अपभ्रंश लिए है। बहुरि देश देशनिविषैं भाषा अन्य अन्य प्रकार है सो महत पुरुष शास्त्रनिविषै अपभ्रंश शब्द कैसैं लिखैं। बालक तोतला बोलै, तौ बडे तौ न बोलैं। बहुरि एकदेशकी भाषारूप शास्त्र दूसरे देशविषै जाय, तौ वहां ताका अर्थ कैसैं भासै। तातैं प्राकृत संस्कृतादि शुद्ध शब्दरूप ग्रंथ जोड़ै।

बहुरि व्याकरण विना शब्दका अर्थ यथावत् न भासै। न्याय विना लक्षण परीक्षा आदि यथावत् न होय सकै। इत्यादि वचन द्वारि वस्तुका स्वरूप निर्णय व्याकरणादि विना नीकै न होता जानि तिनकी आम्नाय अनुसार, कथन किया। भाषाविषै भी तिनकी थोरी बहुत आम्नाय आए ही उपदेश होय सकै है। तिनकी बहुत अम्नायतै नीकै निर्णय होय सकै है।

बहुरि जो कहौगे—ऐसे है, तौ अब भाषारूप ग्रंथ काहेकौं बनाईए है?

ताका समाधान—कालदोषतै जीवनिकी मंद बुद्धि जानि केई जीवनिकै जेता ज्ञान होगा, तेता ही होगा ऐसा अभिप्राय विचारि भाषाग्रंथ कीजिए है। सो जे जीव व्याकरणादिकका अभ्यास न करि सकै, तिनकौं ऐसे ग्रंथनिकरि ही अभ्यास करना। बहुरि जे जीव शब्दनिकी नानायुक्ति लिए अर्थ करनेकौं ही व्याकरण अवगाहै है, वादादिकरि महंत होनेकौं न्याय अवगाहै हैं, चतुरपना प्रकट करनेके अर्थि काव्य अवगाहै है इत्यादि लौकिक प्रयोजन लिए इनिका अभ्यास करै हैं, ते धर्मात्मा नाहीं। बनै जेता थोरा बहुत अभ्यास इनका करि आत्महितकै अर्थि तत्त्वादिकका निर्णय करै है, सोई धर्मात्मा पंडित जानना।

बहुरि केई जीव पुण्य पापादिक फलके निरूपक पुराणादि शास्त्र, वा पुण्य पापक्रियाके निरूपक आचारादि शास्त्र, वा गुणस्थान मार्गणा कर्मप्रकृति त्रिलोकादिकके निरूपक

नुयोगके शास्त्र तिनका अभ्यास करै हैं। सो जो इनिका प्रयो-जन आप न विचारै, तब तौ सूवाकासा ही पढ़ना भया। बहुरि जो इनिका प्रयोजन विचारै है, तहाँ पापकौं बुरा जानना पुण्यकौं भला जानना, गुणस्थानादिकका स्वरूप जानि लेना, इनिका अभ्यास करैंगे, तितना हमारा भला है; इत्यादि प्रयोजन विचार्या, सो इसतैं इतना तौ होसी नरकादिक न होसी, स्वर्गादिक होसी, परन्तु मोक्षमार्गकी तौ प्राप्ति होय नाहीं। पहले सांचा तत्त्वज्ञान होय, तहां पीछे पुण्यपापका फलकौं संसार जानै शुद्धो-पयोगतैं मोक्ष मानै, गुणस्थानादिरूप जीवका व्यवहार निरूपण जानै, इत्यादि जैसाका तैसा श्रद्धान करता संता इनिका अभ्यास करै, तौ सम्यग्ज्ञान होय। सो तत्त्वज्ञानकौं कारण अध्यात्मरूप द्रव्यानुयोगके शास्त्र हैं। बहुरि केई जीव तिन शास्त्रनिका भी अभ्यास करैं हैं। परन्तु तहां जैसे लिख्या है, तैसे आप निर्णय करि आपकौं आपरूप, परकौं पररूप, आस्रवादिककौं आस्र-वादिरूप न श्रद्धान करै हैं। मुखतैं तौ यथावत् निरूपण ऐसा भी करै, जाके उपदेशतैं और जीव सम्यग्दृष्टी होय जांय, परन्तु जैसे लड़का स्त्रीका स्वांग करि ऐसा गान करै, जाकौं सुनतैं अन्य पुरुष स्त्री कामरूप होय जांय। परन्तु वह जैसे सीख्या तैसे कहै है, वाकौं किछू भाव भासै नाहीं, तातैं आप कामासक्त न हो है। तैसे यहु जैसे लिख्या, तैसे उपदेश दे, परन्तु आप अनुभव नाहीं करै है। जो आपकै श्रद्धान भया होता, तौ और

तत्त्वका अंश और तत्त्वविषैं न मिलावता, सो याकै फल नाहीं, तातैं सम्यग्ज्ञान होता नाहीं। ऐसैं यहु ग्यारह अंगपर्यंत पढ़ैं, तौ भी सिद्धि होती नाहीं। सो समयसारादिविषैं मिथ्यादृष्टीकै ग्यारह अंगनिका ज्ञान होना लिख्या है।

यहाँ कोऊ कहै—ज्ञान तौ इतना हो है, परन्तु जैसैं अभव्यसेनके श्रद्धानरहित ज्ञान भया, तैसैं हो है ?

ताका समाधान—वह तौ पापी था, जाकै हिंसादिकी प्रवृत्तिका भय नाहीं। परंतु जो जीव ग्रैवेयिक आदि विषैं जाय हैं, तिनकैं ऐसा ज्ञान हो है, सो तौ श्रद्धानरहित नाहीं ताकै तौ ऐसा ही श्रद्धान है, ए ग्रन्थ सांचे हैं परंतु तत्त्वश्रद्धान सांचा न भया। समयसारविषैं[1] एक ही जीवकै धर्मका श्रद्धान एकादशांगका ज्ञान महाव्रतादिकका पालना लिख्या है। प्रवचनसारविषैं[2]

---

१ मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु ॥२७४॥

मोक्षं हि न तावदभव्यः श्रद्धत्ते शुद्धज्ञानमयात्मज्ञानशून्यत्वात्। ततो ज्ञानमपि नासौ श्रद्धत्ते ज्ञानमश्रद्दधानश्चाचाराद्येकादशांगं श्रुतमधीयानोऽपि श्रुताध्ययनगुणाभावान्न ज्ञानी स्यात् स किल गुणः श्रुताध्ययनस्य यद्विविक्तवस्तुभूतज्ञानमयात्मज्ञानं तच्च विविक्तवस्तुभूतं ज्ञानमश्रद्दधानस्याभव्यस्य श्रुताध्ययनेन न विधातुं शक्येत ततस्तस्य तद्गुणाभावः, ततश्च ज्ञानश्रद्धानाभावात् सोऽज्ञानीति,प्रतिनियतः ॥

२ परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरो वि ॥३९॥

ऐसा लिख्या है आगमज्ञान ऐसा भया जाकरि सर्वपदार्थनिको हस्तामलकवत् जानै है। यह भी जानै है इनिका जाननहारा मैं हौं। परन्तु मैं ज्ञानस्वरूप हौं, ऐसा आपको परद्रव्यतै भिन्न केवल चैतन्यद्रव्य नाहीं अनुभवै है। तातैं आत्मज्ञानशून्य आगमज्ञान भी कार्यकारी नाहीं। या प्रकार सम्यग्ज्ञानके अर्थि जैन शास्त्रनिका अभ्यास करै हैं, तौ भी याकै सम्यग्ज्ञान नाहीं।

## [ सम्यक्चारित्रका अन्यथारूप ]

बहुरि इनिकै सम्यक् चारित्रके अर्थि कैसें प्रवृत्ति है, सो कहिए है—बाह्यक्रिया ऊपरि तौ इनकै दृष्टि है, अर परिणाम सुधरने बिगरनेका विचार नाहीं। बहुरि जो परिणामनिका भी विचार होय, तौ जैसा अपना परिणाम होता दीसै, तिनहीकै ऊपरि दृष्टि रहै है। परन्तु उन परिणामनिकी परंपरा विचारैं अभिप्रायविषै जो वासना है, ताको न विचारैं है। अर फल लागै है, सो अभिप्रायविषै वासना है, ताका फल लागै है। या इसका विशेष व्याख्यान आगै करेंगे। तहां स्वरूप नीकैं भासैगा। ऐसी पहिचानि बिना बाह्य आचरणका ही उद्यम है तहाँ केई जीव तौ कुलक्रमकरि वा देखादेखी वा क्रोध मान माया लोमादिकतै आचरण आचरै हैं। सो इनिकै तौ धर्मबुद्धि ही नाहीं। सम्यक्चारित्र कहांतैं होय। ए जीव कोई तौ भोले हैं वा कपायी,

होता नाहीं। बहुरि केई जीव ऐसा मानैं हैं, जो जाननेमैं कहा है अर माननेमैं कहा है, किछू करैगा तौ फल लागैगा। ऐसैं विचार व्रत तप आदि क्रियाहीका उद्यमी रहैं हैं अर तत्त्वज्ञानका उपाय न करैं हैं। सो तत्त्वज्ञान बिना महाव्रतादिका आचरण भी मिथ्याचारित्र ही नाम पावै है। अर तत्त्वज्ञान भए किछू भी व्रतादिक नाहीं है, तौ भी असंयतसम्यग्दृष्टी नाम पावै है तातैं पहले तत्त्वज्ञानका उपाय करना, पीछैं कषाय घटावनेको बाह्य साधन करना। सो ही योगींद्रदेवकृत श्रावकाचारविषैं कहा है—

"दंसणभूमिह बाहिरा, जिय वयरुक्ख ण हुंति।"

याका अर्थ—यहु सम्यग्दर्शनभूमिका बिना हे जीव [illegible]-रूपी वृक्ष न होय। भावार्थ—जिन जीवनिकैं तत्त्वज्ञान [illegible], ते यथार्थ आचरण न आचरैं हैं। सोई विशेष [illegible] हैं—

केई जीव पहलैं तौ बडी प्रतिज्ञा धरि बैठैं [illegible] विषय कषायवासना मिटी नाहीं। तब जैसैं तैसैं [illegible] किया चाहै, तहां तिस प्रतिज्ञाकरि परिणाम [illegible] हैं। [illegible] बहुत उपवासकरि बैठै, पाछैं पीडातैं दुखी [illegible] गमावै, धर्मसाधन न करै। सो पहलैं ही [illegible] ही प्रतिज्ञा क्यों न लीजिये। दुखी होनेैं [illegible] ताका फल भला कैसैं लागैगा। [illegible]

बडी प्रतिज्ञा करैं हैं, सो अपनी शक्ति देखि करैं हैं। जैसे परिणाम चढते रहैं, सो करैं हैं, प्रमाद भी न होय, अर आकुलता भी न उपजै। ऐसी प्रवृत्ति कार्यकारी जाननी। बहुरि जिनकै धर्मऊपरि दृष्टि नाहीं, ते कबहू तौ बडा धर्म आचरैं, कबहूं अधिक स्वच्छन्द होय प्रवर्त्तैं। जैसें कोई धर्मपर्वविषैं तौ बहुत उपवासादि करैं, कोई धर्मपर्वविषैं बारम्बार भोजनादि करैं। सो धर्मबुद्धि होय, तौ यथायोग्य सब धर्मपर्वनिविषैं यथायोग्य संयमादि धरै। बहुरि कबहू तौ कोई धर्मकार्यविषैं बहुत धन खरचै, कबहू कोई धर्मकार्य आनि प्राप्त भया होय, तौ भी तहां थोरा भी धन न खरचै। सो धर्मबुद्धि होय, तौ यथाशक्ति यथा योग्य सब ही धर्मकार्यनिविषैं धन खरच्या करै। ऐसैं ही अन्य जानना। बहुरि जिनकै सांचा धर्म साधन नाहीं, ते कोई क्रिया तौ बहुत बडी अंगीकार करैं अर कोई हीनक्रिया किया करैं। जैसें धनादिकका तौ त्याग किया, अर चोखा भोजन चोखा वस्त्र इत्यादि विषयनिविषैं विशेष प्रवर्त्तैं। बहुरि कोई जामा पहरना, स्त्रीसेवन करना, इत्यादि कार्यनिका तौ त्यागकरि धर्मात्मापना प्रकट करै। अर पीछै खोटे व्यापारादि कार्य करैं तहां लोकनिंद्य पापक्रियाविषैं प्रवर्त्तैं ऐसैं ही कोई क्रिया अति ऊंची, कोई क्रिया अति नीची करैं। तहां लोकनिंद्य होय, धर्मकी हास्य करावैं। देखो अमुक धर्मात्मा ऐसे कार्य करै है। जैसैं कोई पुरुष एक वस्त्र तौ अति उत्तम पहरै, एक वस्त्र अति हीन

पहरै, तौ हास्यही होय। तैसे यहु हास्य धारै है। सांचा धर्मकी तौ यहु आम्नाय है, जेता अपना रागादि दूरि भया होय, ताकै अनुसार जिस पदविषै जो धर्मक्रिया सम्भवै, सो सर्व अंगीकार करै। जो थोरा रागादि मिट्या होय, तौ नीचा ही पदविषै प्रवर्त्ते। परन्तु ऊंचा पद धराय, नीची क्रिया न करै।

यहां प्रश्न—जो स्त्रीसेवनादिकका त्याग ऊपरिकी प्रतिमा विषै कह्या है, सो नीचली अवस्थावाला तिनका त्याग करै कि न करै। ताका समाधान—सर्वथा तिनिका त्याग नीचली अवस्थावाला कर सकता नाहीं। कोई दोष लागै है, तातै ऊपरिकी प्रतिमाविषै त्याग कह्या है। नीचली अवस्थाविषै जिसप्रकार त्याग सम्भवै, तैसा नीचली अवस्थावाला भी करै। परंतु जिस नीचली अवस्थाविषै जो कार्य सम्भवै ही नाहीं ताका करना तौ कषायभावनिहीतैं हो है। जैसे कोऊ सप्तव्यसन सेवै, स्वस्त्रीका त्याग करै, तौ कैसे बनै? यद्यपि स्वस्त्रीका त्याग करना धर्म है, तथापि पहलै सप्तव्यसनका त्याग होय, तब ही स्वस्त्रीका त्याग करना योग्य है। ऐसे ही अन्य जानने। बहुरि सर्व प्रकार धर्मको न जानै, ऐसा जीव कोई धर्मका अंगको मुख्यकरि अन्य धर्मनिकौ गौण करै है। जैसे केई जीव दयाधर्मकौ मुख्यकरि पूजा प्रभावनादि कार्यकौ उत्थापै हैं, केई पूजा प्रभावनादि धर्मकौ मुख्यकरि हिंसादिकका भय न राखै हैं, केई तपकी मुख्यताकरि आर्तध्यानादिककरिकै भी उपवासादि करै वा आपकौ तपस्वी

याका अर्थ—मोक्षतैं पराङ्मुख हूवा ऐसे अतिदुस्तर पंचाग्नि तपनादि कार्य तिनकरि आप ही क्लेश करै है तौ करौ। बहुरि अन्य केई जीव महाव्रत अर तपका भारकरि चिरकालपर्यंत क्षीण होते क्लेश करै है, तौ करौ। परन्तु यहु साक्षात् मोक्षस्वरूप सर्वरोगरहित पद जो आपै आप अनुभवमैं आवै, ऐसा ज्ञान स्वभाव सो तौ ज्ञानगुणबिना अन्य कोई भी प्रकारकरि पावनेकौं समर्थ नाहीं है। बहुरि पंचास्तिकायविषैं जहां अंतविषैं व्यवहारा-भासवालेनिका कथन किया है, तहां तेरह प्रकार चारित्र होतैं भी ताका मोक्षमार्गविषैं निषेध किया है। बहुरि प्रवचनसारविषैं आत्मज्ञानशून्य संयमभाव अकार्यकारी कह्या है। बहुरि इनही ग्रन्थनिविषैं वा अन्य परमात्मप्रकाशादि शास्त्रनिविषैं इस प्रयोजन लिए जहां तहां निरूपण है। तातैं पहलैं तत्त्वज्ञान भए ही आचरण कार्यकारी है।

यहां कोउ जानैगा, बाह्य तौ अणुव्रत महाव्रतादि साधै है, अंतरङ्ग परिणाम नाहीं वा स्वर्गादिककी वांछाकरि साधै है, सो ऐसैं साधै तौ पापबंध होय। द्रव्यलिंगी मुनि ऊपरिम ग्रैवेयक-पर्यंत जाय है। परावर्तननिविषैं इकतीस सागर पर्यंत देवपदकी प्राप्ति अनंत बार होनी लिखी है सो ऐसे ऊंचेपद तौ तब ही पावै, जब अंतरङ्ग परिणामपूर्वक महाव्रत पालै, महामंदकषायी होय, इस लोक परलोकके भोगादिककी चाहि न होय, केवल धर्मबुद्धितैं मोक्षाभिलाषी हुवा साधन साधै। तातैं द्रव्यलिंगीकै

स्थूल तौ अन्यथापनौ है नाहीं, सूक्ष्म अन्यथापनो है सो सम्यग्दृष्टीकौं भासै है। अब इनकै धर्मसाधन कैसें है, अर तामैं अन्यथापनो कैसें है ? सो कहिए हैं—

प्रथम तौ ससारविषै नरकादिकका दुख जानि स्वर्गादिविषै भी जन्म मरणादिका दुख जानि ससारतैं उदास होय, मोक्षकौं चाहै हैं। सो इनि दुःखनिकौं तौ दुख सब ही जानै हैं, इन्द्र अहमिन्द्रादिक विषयानुरागतै इन्द्रियजनित सुख भोगवै हैं ताका भी दुख जानि निराकुल सुखअवस्थाकौं पहचानि मोक्ष चाहै है, सोई सम्यग्दृष्टि जानना। बहुरि विषयसुखादिकका फल नरकादिक है, शरीर अशुचि विनाशीक है—पोषनेंयोग्य नाहीं—कुटुम्बादिक स्वार्थके सगे हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका दोष विचारि तिनिका तौ त्याग करै है। व्रतादिकका फल स्वर्गमोक्ष है, तपश्चरणादि पवित्र अविनाशी फलके दाता हैं, तिनकरि शरीर सोखन योग्य है, देव गुरु शास्त्रादि हितकारी हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका गुण विचारि तिनहीका अगीकार करै है। इत्यादि प्रकारकरि कोई परद्रव्यकौं बुरा जानि अनिष्ट श्रद्दहै है। कोई परद्रव्यकौं भला जानि इष्ट श्रद्दहै है। सो परद्रव्यविषै इष्ट अनिष्टरूप श्रद्धान सो मिथ्या है। बहुरि इसही श्रद्धानतैं याकै उदासीनता भी द्वेषबुद्धिरूप हो है। जातैं काहूकौं बुरा जानना, ताहीका नाम द्वेष है।

कोऊ कहैगा, सम्यग्दृष्टी भी तौ बुरा जानि परद्रव्यकौं त्यागै है।

ताका समाधान—सम्यग्दृष्टी परद्रव्यनिकौं बुरा न जा
है। अपना रागभावकौं बुरा जानै है। आप रागभावकौं छो
तातैं ताका कारणका भी त्याग हो है। वस्तु विचारैं कोई प
द्रव्य तौ भला बुरा है नाहीं।

कोऊ कहैगा, निमित्तमात्र तौ है।

ताका उत्तर—परद्रव्य जोरावरी तौ कोई बिगारता नाह
अपने भाव बिगरै तब वह भी बाह्यनिमित्त है। बहुरि बा
निमित्तबिना भी भाव बिगरै हैं। तातैं नियमरूप निमित्त
नाहीं। ऐसैं परद्रव्यका तौ दोष देखना मिथ्याभाव है। रा
दिभाव ही बुरे हैं। सो याकै ऐसी समझि नाहीं। यहु परद्रव
निका दोष देखि तिन विषै द्वेषरूप उदासीनता करै है। स
उदासीनता तौ ताका नाम है, काहू ही परद्रव्यका दोष वा
न भासै, तातैं काहूकौं बुरा भला न जानै। आपकौं आप ज
पर कौं परजानै परतैं किछू भी प्रयोजन मेरा नाहीं, ऐसा म
साक्षीभूत रहै। सो ऐसी उदासीनता ज्ञानीहीकै होय। ब
यहु उदासीन होय शास्त्रविषैं व्यवहारचारित्र अणुव्रत महाव्र
रूप कह्या है, ताकौं अंगीकार करै है, एकदेश वा सर्वदेश हिंस
पापकौं छाडै है, तिनकी जायगा अहिंसादि पुण्यरूप कार्य
विषै प्रवर्तै है। बहुरि जैसैं पर्यायाश्रित पापकार्यनिविषैं क
पना मानि था तैसें ही अब पर्यायाश्रित पुण्यकार्यनिविषैं कर्ता
अपना माननैं लागा, ऐसैं पर्यायाश्रित कार्यनिविषैं अहं

मानने की समानता भई। जैसैं मैं जीव मारौं हौं, मैं परिग्रहधारी हौं, इत्यादिरूप मानि थी, तैसैही मैं जीवनिकी रक्षा करौं हौं मैं नग्न परिग्रहरहित हौं, ऐसी मानि भई। सो पर्यायाश्रित कार्यनिविषै अहंबुद्धि है, सो ही मिथ्यादृष्टि है। सोई समयसार विषै कह्या है—

**ये तु कर्त्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसावृता ॥**
**सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोपि मुमुक्षुता ॥१॥**

[ सर्व० वि० श्लो० ३

याका अर्थ—जे जीव मिथ्या अंधकारव्याप्त होते सैं आपकौं पर्यायाश्रित क्रियाका कर्त्ता मानै हैं, ते जीव मोक्षाभिलाषी हैं, तौऊ तिनकै जैसे अन्यमती सामान्य मनुष्यनिकै मोक्ष न होय, तैसैं मोक्ष न हो है। जातैं कर्तापनाका श्रद्धानकी समानता है। बहुरि ऐसैं आप कर्त्ता होय श्रावकधर्म वा मुनिधर्मकी क्रियाविषै मन वचन कायकी प्रवृत्ति निरंतर राखै है जैसैं उन क्रियानिविषै भंग न होय, तैसे प्रवर्त्तै है। सो ऐसे भाव तौ सराग हैं। चारित्र है, सो वीतरागभावरूप है। तातैं ऐसे साधनकौं मोक्षमार्ग मानना मिथ्याबुद्धि है।

यहां प्रश्न—जो सराग वीतराग भेदकरि दोयप्रकार चारित्र कह्या है, सो कैसे है?

ताका उत्तर—जैसैं तंदुल दोय प्रकार है—एक तुषसहित

है एक तुषरहित है, तहाँ ऐसा जानना—तुष है सो तंदुलका स्वरूप नाहीं। तंदुलविषैं दोष है। अर कोई स्याना तुषसहित तंदुलका संग्रह करै था, ताकौं देखि कोई भोला तुषनिहीकौं तंदुल मानि संग्रह करै, तौ वृथा खेद खिन्न ही होय। तैसैं चारित्र दोय प्रकार है एक सराग है एक वीतराग है। तहाँ ऐसा जानना—राग है, सो चारित्रका स्वरूप नाहीं। चारित्र विषैं दोष है। अर केई ज्ञानी प्रशस्तरागसहित चारित्र धरै हैं। तिनकौं देखि कोई अज्ञानी प्रशस्तरागहीकौं चारित्र मानि संग्रह करै, तौ वृथा खेदखिन्न ही होय।

यहाँ कोऊ कहैगा—पापक्रिया करतैं तीव्ररागादिक होते थे, अब इनि क्रियानिकौं करतैं मंदराग भया। तातैं जेता अंश रागभाव घट्या, तितना अंश तौ चारित्र कहौ। जेता अंश राग रह्या, तेता अंश राग कहौ ऐसैं याकै सरागचारित्र संभवै है।

ताका समाधान—जो तत्त्वज्ञानपूर्वक ऐसैं होय, तौ कहौ हो तैसैं ही है। तत्त्वज्ञानबिना उत्कृष्ट आचरण होतैं भी असंयम ही नाम पावै है। जातैं रागभाव करनेका अभिप्राय नाहीं मिटै है। सोई दिखाइए है—

द्रव्यलिंगी मुनि राज्यादिककौं छोडि निर्ग्रन्थ हो है, अठाईस मूल गुणनिकौं पालै है, उग्रोग्र अनशनादि घना तप करै है, क्षुधादिक बाईस परीषह सहै है, शरीरका खंड खंड भए भी व्याकुल न हो है, व्रतभंगके कारण अनेक मिलैं, तौ भी दृढ रहै

है, कोईसेती क्रोध न करै है, ऐसा साधनका मान न करै है ऐसे साधनविषै कोई कपटाई नाही है, इस साधनकरि इस लोक पर लोकके विषयसुखकौं न चाहै है। ऐसीयाकी दशा भई है। जो ऐसी दशा न होय, तौ ग्रैवेयकपर्यंत कैसे पहुंचै। परंतु याकौं मिथ्यादृष्टी असयमी ही शास्त्रविषै कह्या। सो ताका कारण यहु है—याकै तत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञान साचा भया नाही। पूर्वै वर्णन किया, तैसें तत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञान भया है। तिस ही अभिप्रायतें सर्व साधन करै है। सो इन साधननिका अभिप्रायकी परंपराकौं विचारे कषायनिका अभिप्राय आवै है। सो कैसे ? सो सुनहु—यहु पापको कारण रागादिककौं तौ हेय जानि छोरै है, परंतु पुण्यका कारण प्रशस्तरागकौं उपादेय मानै है। ताके बधनेंका उपाय करै है। सो प्रशस्तराग भी तौ कषाय है। कषायकौं उपादेय मान्या, तब कषाय करनेका ही श्रद्धान रह्या। अप्रशस्त परद्रव्यनिविषै राग करनेका अभिप्राय भया। किछू परद्रव्यनिविषै साम्यभावरूप अभिप्राय न भया।

यहां प्रश्न—जो सम्यग्दृष्टी भी तौ प्रशस्तरागका उपाय राखै है।

ताका उत्तर यहु—जैसें काहूकै बहुत दड होता था, सो वह थोरा दड देनेका उपाय राखै है। अर थोरा दड दिए हर्ष भी मानै है। परंतु श्रद्धानविषै दड देना, अनिष्ट ही मानै है। तैसें सम्यग्दृष्टीकै पापरूप बहुत कषाय होता था

रूप थोरा कषायकरनेका उपाय राखै है। अर थोरा कषाय भए हर्ष भी मानै है। परन्तु श्रद्धानविषैं कषायकौं हेय ही मानै है। बहुरि जैसैं कोऊ कमाईका कारण जानि व्यापारादिकका उपाय बनिआए हर्ष मानै है। तैसैं द्रव्यलिंगी मोक्षका कारण जानि प्रशस्तरागका उपाय राखै है। उपाय बनिआए हर्ष मानै है। ऐसैं प्रशस्तरागका उपायविषैं वा हर्षविषैं समानता होतैं भी सम्यग्दृष्टीकैं तौ दंडसमान मिथ्यादृष्टिकैं व्यापारसमान श्रद्धान पाइए है। तातैं अभिप्रायविषैं विशेष भया। बहुरि याकै परीषह तपश्चरणादिकके निमित्ततैं दुख होय, ताका इलाज तौ न करै है, परन्तु दुख वेदै है। सो दुखका वेदना कषाय ही है। जहाँ वीतरागता हो है, तहाँ तौ जैसै अन्य ज्ञेयकौं जानै है, तैसै ही दुखका कारण ज्ञेयकौं जानै है। सो ऐसी दशा याकै न हो है। बहुरि उनकौ सहै है, सो भी कषायका अभिप्रायरूप विचारतैं सहै है। सो विचार ऐसा हो है—जो परवशपनैं नरकादिगतिविषैं बहुत दुख सहे, ये परीषहादिकका दुख तौ थोरा है। याकौं स्ववश सहैं स्वर्ग मोक्षसुखकी प्राप्ति हो है। जो इनकौं न सहिए अर विषयसुख सेईए, तौ नरकादिककी प्राप्ति होसी तहाँ बहुत दुख होगा। इत्यादि विचारविषै परीषहनिविषै अनिष्टबुद्धि रहै है। केवल नरकादिकके भयतैं वा सुखके लोभतैं तिनकौं सहै है। सो ए सर्व कषायभाव ही हैं। बहुरि ऐसा विचार हो है—जे कर्म बाँधे थे, ते भोगेबिना छूटते नाहीं। तातैं मोकौं सहनैं

जाए। सो ऐसे विचारतें कर्मफल चेतनारूप प्रवर्त्ते है। बहुरि पर्यायदृष्टितें जो परीषहादिकरूप अवस्था हो है, ताकौं आपकै भई मानै है। द्रव्यदृष्टितें अपनी वा शरीरादिककी अवस्थाकौं भिन्न न पहिचानै है। ऐसें ही नानाप्रकार व्यवहार विचारतें परीषहादिक सहै है। बहुरि याने राज्यादि विषयसामग्रीका त्याग किया है, वा इष्ट भोजनादिकका त्याग किया करै है। सो जैसें कोऊ दाहज्वरवाला वायु होनेके भयतें शीतलवस्तु सेवनका त्याग करै है, परतु यावत् शीतल वस्तुका सेवन रुचै, तावत् वाकै दाहका अभाव न कहिए। तैसें रागसहित जो नरकादिकके भयतें विषय-सेवनका त्याग करै है, परतु यावत् विषयसेवन रुचै, तावत् रागका अभाव न कहिए। बहुरि जैसें अमृतका आस्वादी देवकौं अन्य भोजन स्वयमेव न रुचै, तैसें स्वरसका आस्वादकरि विषयसेव-नकी रुचि याकै न हो है। या प्रकार फलादिककी अपेक्षा परी-षहसहनादिकौं सुखका कारण जानै है, अर विषयसेवनादिकौं दुखका कारण जानै है। बहुरि तत्कालविषैं परीषह सहनादिकतैं दुख होना मानै है। विषयसेवनादिकतैं सुख मानै है। बहुरि जिनतैं सुख दुख होना मानिए, तिनविषैं इष्ट अनिष्ट बुद्धितैं रागद्वेष रूप अभिप्राय का अभाव होय नाहीं, बहुरि जहां राग द्वेष है, तहां चारित्र होय नाहीं। तातैं यहु द्रव्यलिंगी विषय सेवन छोरि तपश्चरणादि करै है, तथापि असंयमी ही है। सिद्धांतविषै असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीतैं भी याकौं हीन

रुया है। जातें उनकै चौथा पांचवां गुणस्थान है, याकै पहला ही गुणस्थान है।

यहाँ कोऊ कहै कि—असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीकै कषायनिकी प्रवृत्ति विशेष है, अर द्रव्यलिंगी मुनिकै थोरी है, याहीतें असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टी तौ सोलहवां स्वर्गपर्यंत ही जाय अर द्रव्यलिंगी उपरिम ग्रैवेयकपर्यंत जाय। जातें भाव लिंगी मुनितें तौ द्रव्यलिंगीकों हीन कहौ, असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीतें याकों हीन कैसें कहिए?

ताका समाधान—असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टिकै कषाय निकी प्रवृत्ति तौ है, परन्तु श्रद्धानविषै किसी ही कषायके करनेका अभिप्राय नाहीं। बहुरि द्रव्यलिंगीकै शुभकषाय करनेका अभिप्राय पाईए है। श्रद्धानविषै तिनकौं भले जानै है। तातैं श्रद्धान-अपेक्षा असंयत सम्यग्दृष्टित भी याकै अधिक कषाय है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै योगनिकी प्रवृत्ति शुभरूप घनी हो है। अर अघातिकर्मनिविषै पुण्य पापबंधका विशेष शुभ अशुभ योगनिकै अनुसार है। तातें उपरिम ग्रैवेयकपर्यंत पहुंचै है, सो किछू कार्यकारी नाहीं। जातें अघातिया कर्म आत्मगुणके घातक नाहीं। इनिके उदयतें ऊंचे नीचे पद पाए तौ कहा भया। ए तौ बाह्य संयोगमात्र संसारदशाके स्वांग हैं। आप तौ आत्मा है, तातें आत्मगुणके घातक ए कर्म्म हैं तिनका हीनपना कार्यकारी है। सो घातिया कर्मनिका बंधबाह्य प्रवृत्तिकै अनुसार नाहीं। अंतरंग

पायशक्तिके अनुसारि है। याहीतैं द्रव्यलिंगीतैं असंयत देस-
यत सम्यग्दृष्टिकै घातिकर्मनिका बंध थोरा है द्रव्यलिंगीकै
ी सर्वघातिकर्मनिका बंध बहुत स्थिति अनुभाग लिए होय।
र असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टिकै मिथ्यात्व अनंतानुबंधी
ादि कर्मका तौ बंध है ही नाहीं। अवशेषनिका बंध हो है,
ो स्तोक स्थिति अनुभाग लिए हो है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै
दाचित् गुणश्रेणीनिर्जरा न होय सम्यग्दृष्टिकै कदाचित हो
। देश सकल संयम भए निरंतर हो है। याहीतै यहु मोक्ष-
ार्गी भया है। तातैं द्रव्यलिंगी मुनि असंयत देशसंयत सम्य
्टीतैं हीन शास्त्रविषैं कह्या है। सो समयसार शास्त्रविषैं
्यलिंगी मुनिका हीनपना गाथा वा टीका कलशानिविषैं प्रगट
ा है। बहुरि पंचास्तिकायकी टीकाविषैं जहां केवल व्यव
ारलंबीका कथन किया है, तहां व्यवहार पंचाचार होतैं भी
ा हीनपना ही प्रगट किया है। बहुरि प्रवचनसारविषैं संसार-
व द्रव्यलिंगीकौं कह्या। बहुरि परमात्मप्रकाशादि अन्य शास्त्र-
विषैं भी इस व्याख्यानकौं स्पष्ट किया है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै
जप तप शील संयमादि क्रिया पाइए है, तिनकौं भी अका
ारी इन शास्त्रनिविषैं जहां दिखाये है, सो तहां देखि लेना।
ां ग्रन्थ बधनेके भयतैं नाहीं लिखिए है। ऐसे केवल व्यव
ाराभासके अवलंबी मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण किया।

निरूपण करना, सो व्यवहार है जैसैं माटीके घडेकौं माटीका घडा निरुपए सो निश्चय, अर घृतसयोगका उपचारकरि वाकौं ही घृतका घडा कहिए, सो व्यवहार। ऐसे ही अन्यत्र जानना। तातैं तू किसीकौ निश्चय मानैं, किसीकौं व्यवहार मानैं, सो भ्रम है। बहुरि तेरे माननैं विषै भी निश्चय व्यवहारकै परस्पर विरोध आया। जो तू आपकौ सिद्ध मान शुद्ध मानै है, तौ व्रतादिक काहेकौ करै है। जो व्रतादिकका साधनकरि सिद्ध भया चाहै है, तौ वर्त्तमानविषैं शुद्धआत्माका अनुभवन मिथ्या भया। ऐसैं दोऊ नयनिकै परस्पर विरोध है। तातैं दोऊ नयनिकै परस्पर विरोध है। तातैं दोऊ नयनिका उपादेयपना बनैं नाहीं।

यहा प्रश्न—जो समयसारादिविषै शुद्ध आत्माका अनुभवकौ निश्चय कह्या है। व्रत तप सयमादिककौ व्यवहार कह्या है, तैसैं ही हम मानैं हैं।

ताका समाधान—शुद्ध आत्माका अनुभव सांचा मोक्षमार्ग है। तातैं याकौ निश्चय कह्या। यहां स्वभावतैं अभिन्न परभावतैं भिन्न ऐसा शुद्ध शब्दका अर्थ जानना। ससारीका सिद्ध मानना ऐसा भ्रमरूप अर्थ शुद्ध शब्दका न जानना। बहुरि व्रत तप आदि मोक्षमार्ग हैं नाहीं, निमित्तादिककी अपेक्षा उपचारतै इनकौ मोक्षमार्ग कहिए है, तातैं इनकौं व्यवहार कह्या। ऐसैं भूतार्थ

अभूतार्थ मोक्षमार्गपनाकरि इनकों निश्चय व्यवहार कहे हैं। सो ऐसे ही मानना। बहुरि ए दोऊ ही सांचे मोक्षमार्ग हैं। इन दोऊनिकौं उपादेय मानना, सो तौ मिथ्याबुद्धि ही है। तहाँ वह कहै है—श्रद्धान तौ निश्चयका राखै है, अर प्रवृत्ति व्यवहाररूप राखै हैं, ऐसें हम दोऊनिकौं अंगीकार करें हैं। सो भी बनें नाही। जातैं निश्चयका निश्चयरूप व्यवहारका व्यवहाररूप श्रद्धान करना युक्त है। एक ही नयका श्रद्धान भए एकांत मिथ्यात्व हो है। बहुरि प्रवृत्तिविषैं नयका प्रयोजन ही नाही। प्रवृत्ति तौ द्रव्यकी परिणति है। तहां जिस द्रव्यकी परिणति होय ताकौं तिसहीकी प्ररूपिए सो निश्चयनय अर तिसहीकौं अन्य द्रव्यकी प्ररूपिए, सो व्यवहारनय, ऐसे अभिप्राय अनुसार प्ररूपणतैं तिस प्रवृत्तिविषैं दोऊ नय बनै हैं। किछू प्रवृत्ति ही तौ नयरूप है नाहीं। तातैं या प्रकार भी दोऊ नयका ग्रहण मानना मिथ्या है। तौ कहा करिए, सो कहिए है—निश्चय-नयकरि जो निरूपण किया होय, ताकौं तौ सत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान अंगीकार करना, अर व्यवहारनयकरि जो निरूपण किया होय, ताका असत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान छोडना। सो ही समयसारविषै कह्या है—

सर्वत्राध्यवसायमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै—
स्तमन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।

निरूपण करना, सो व्यवहार है जैसैं माटीके घडेकौं माटीका घडा निरुपए सो निश्चय, अर घृतसयोगका उपचारकरि वाकौं ही घृतका घडा कहिए, सो व्यवहार। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। तातैं तू किसीकौ निश्चय मानैं, किसीकौं व्यवहार मानैं, सो भ्रम है। बहुरि तेरे माननें विषै भी निश्चय व्यवहारकै परस्पर विरोध आया। जो तू आपकौं सिद्ध मान शुद्ध मानै है, तौ व्रतादिक काहेकौं करै है। जो व्रतादिकका साधनकरि सिद्ध भया चाहै है, तो वर्त्तमानविषै शुद्धआत्माका अनुभवन मिथ्या भया। ऐसैं दोऊ नयनिकै परस्पर विरोध है। तातैं दोऊ नयनिकै परस्पर विरोध है। तातैं दोऊ नयनिका उपादेयपना बनैं नाहीं।

यहां प्रश्न—जो समयसारादिविषै शुद्ध आत्माका अनुभव-कौं निश्चय कह्या है। व्रत तप सयमादिककौं व्यवहार कह्या है, तैसैं ही हम मानैं हैं।

ताका समाधान—शुद्ध आत्माका अनुभव सांचा मोक्षमार्ग है। तातैं याकौं निश्चय कह्या। यहां स्वभावतैं अभिन्न परभावतैं भिन्न ऐसा शुद्ध शब्दका अर्थ जानना। ससारीकौं सिद्ध मानना ऐसा भ्रमरूप अर्थ शुद्ध शब्दका न जानना। बहुरि व्रत तप आदि मोक्षमार्ग है नाहीं, निमित्तादिककी अपेक्षा उपचारतैं इनकौ मोक्षमार्ग कहिए है, तातैं इनकौं व्यवहार कह्या। ऐसैं भूतार्थ

अभूतार्थ मोक्षमार्गपनाकरि इनकों निश्चय व्यवहार कहे हैं। सो ऐसैं ही मानना। बहुरि ए दोऊ ही सांचे मोक्षमार्ग हैं। इन दोऊनिकौं उपादेय मानना, सो तौ मिथ्याबुद्धि ही है। तहाँ वह कहै है—श्रद्धान तौ निश्चयका राखै हैं, अर प्रवृत्ति व्यवहाररूप राखैं हैं, ऐसैं हम दोऊनिकौं अंगीकार करैं हैं। सो भी बनै नाहीं। जातैं निश्चयका निश्चयरूप व्यवहारका व्यवहाररूप श्रद्धान करना युक्त है। एक ही नयका श्रद्धान भए एकांत मिथ्यात्व हो है। बहुरि प्रवृत्तिविषैं नयका प्रयोजन ही नाहीं। प्रवृत्ति तौ द्रव्यकी परिणति है। तहां जिस द्रव्यकी परिणति होय ताकौं तिसहीकी प्ररूपिए सो निश्चयनय अर तिसहीकौं अन्य द्रव्यकी प्ररूपिए, सो व्यवहारनय, ऐसैं अभिप्राय अनुसार प्ररूपणतैं तिस प्रवृत्तिविषैं दोऊ नय बनै हैं। किछू प्रवृत्ति ही तौ नयरूप है नाहीं। तातैं या प्रकार भी दोऊ नयका ग्रहण मानना मिथ्या है। तौ कहा करिए, सो कहिए है—निश्चय नयकरि जो निरूपण किया होय, ताकौं तौ सत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान अंगीकार करना, अर व्यवहारनयकरि जो निरूपण किया होय, ताका असत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान छोडना। सो ही समयसारविषैं कह्या है—

सर्वत्राध्यवसायमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै—
स्तमन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।

सम्यङ्निश्चयमेकमेव परम निष्कम्प्यमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम्॥१

समयसार कलश निर्जरा०—

याका अर्थ—जातैं सर्व ही हिंसादि वा अहिंसादिविषैं अ
ममाय हैं सो समस्त ही छोडना, ऐसा जिनदेवनिकरि कह्या है
तातैं मैं ऐसैं मानौं हौं, जो पराश्रित व्यवहार है, सो सर्व
छुडाया है। सन्त पुरुष एक निश्चयहीकौं भलै प्रकार निश्चय
अंगीकारकरि शुद्ध ज्ञानघनरूप निजमहिमाविषैं स्थिति क
न करैं हैं।

यहां व्यवहारका तौ त्याग कराया, तातैं निश्चयकौं अं
कारकरि निजमहिमारूप प्रवर्तना युक्त है। बहुरि षट्पाहुड
कह्या है—

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जागदे सकज्जम्मि
जो जागदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे॥१

याका अर्थ—जो व्यवहारविषैं सूता है, सो जोगी अप
कार्यविषैं जागै है। बहुरि जो व्यवहारविषैं जागै है, सो अप
कार्यविषै सूता है। तातैं व्यवहारनयका श्रद्धान छोडि निश्चय
नयका श्रद्धान करना योग्य है। व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्य

१ या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने॥ गीता २ ६९

या तिनके भावनिकौं वा कारण कार्यादिककौं काहूकौं काहूविषैं मिलाय निरूपण करै है। सो ऐसे ही श्रद्धानतैं मिथ्यात्व है। तातैं याका त्याग करना। बहुरि निश्चयनय तिनहीकौं यथावत् निरूपै है, काहूकौं काहूविषैं न मिलावै है। ऐसे ही श्रद्धानतैं सम्यक्त हो है। तातैं याका श्रद्धान करना। यहां प्रश्न—जो ऐसैं है तौ जिनमार्गविषै दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है, सो कैसें?

ताका समाधान—जिनमार्गविषैं कहीं तौ निश्चयनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है ताकौं तौ 'सत्यार्थ ऐसैं ही है' ऐसा जानना। बहुरि कही व्यवहारनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है, ताकौं 'ऐसैं है नाहीं निमित्तादि अपेक्षा उपचार किया है' ऐसा जानना। इस प्रकार जाननेंका नाम ही दोऊ नयनिका ग्रहण है। बहुरि दोऊ नयनिके व्याख्यानकौं समान सत्यार्थ जानि ऐसैं भी है, ऐसा भ्रमरूप प्रवर्त्तनेंकरि तौ दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है नाहीं।

बहुरि प्रश्न—जो व्यवहारनय असत्यार्थ है, तौ ताका उपदेश जिनमार्गविषै काहेकौं दिया—एक निश्चयनयहीका निरूपण करना था?

ताका समाधान—ऐसा ही तर्क समयसारविषै किया है। तहां यह उत्तर दिया है—

**जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभास विणा उ गाहेउ।**
**तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं ॥१,८॥**

याका अर्थ—जैसें अनार्य जो म्लेछ सो ताहि म्लेछभाषा बिना अर्थ ग्रहण करावनेकौं समर्थ न हूजे। तैसें व्यवहार बिना परमार्थका उपदेश अशक्य है। तातें व्यवहारका उपदेश है। बहुरि इसही सूत्रकी व्याख्याविषै ऐसा कह्या है—'**व्यवहारनयो नानुसर्तव्य**'। याका अर्थ—यहु निश्चयके अंगीकार करावनेकौं व्यवहारकरि उपदेश दीजिए है। बहुरि व्यवहारनय है, सो अंगीकार करने योग्य नाहीं।

यहां प्रश्न—व्यवहार बिना निश्चयका उपदेश कैसें न होय। बहुरि व्यवहारनय कैसें अंगीकार करना, सो कहो?

ताका समाधान—निश्चयनयकरि तौ आत्मा परद्रव्यनितें भिन्न स्वभावनितें अभिन्न स्वयसिद्ध वस्तु है ताकौं जे न पहिचानें, तिनकौं ऐसें ही कह्या करिए तौ वह समझै नाहीं। तब उनकौं व्यवहारनयकरि शरीरादिक परद्रव्यनिकी सापेक्षकरि नर नारक पृथ्वीकायादिरूप जीवके विशेष किए। तब मनुष्य जीव हैं, नारकी जीव हैं, इत्यादि प्रकार लिए वाकै जीवकी पहचानि भई। अथवा अभेदवस्तुविषैं भेद उपजाय ज्ञान दर्शनादि गुण-पर्यायरूप जीवके विशेष किए, तब जाननेवाला जीव है, देखने-वाला जीव है, इत्यादि प्रकार लिए वाकै जीवकी पहिचानि

भई। बहुरि निश्चयकरि वीतरागभाव मोक्षमार्ग है। ताकौं जे न पहिचानैं तिनकौ ऐसें ही कह्या करिए, तौ वे समझैं नाहीं। तब उनकौं व्यवहारनयकरि तत्त्वश्रद्धानज्ञानपूर्वक परद्रव्यका निमित्त मेटनेंकी सापेक्षकरि व्रत शील संयमादिकरूप वीतराग भावके विशेष दिखाए, तब वाकै वीतरागभावकी पहचानि भई। याही प्रकार अन्यत्र भी व्यवहारविना निश्चयका उपदेशका न होना जानना। बहुरि यहां व्यवहारकरि नर नारकादि पर्यायहीकौं जीव कह्या, सो पर्यायहीकौं जीव न मानि लेना। पर्याय तौ जीव पुद्गलका संयोगरूप है। तहां निश्चयकरि जीवद्रव्य जुदा है, ताहीकौं जीव मानना। जीवका संयोगतें शरीरादिककौं भी उपचारकरि जीव कह्या, सो कहनें मात्र ही है। परमार्थतें शरीरादिक जीव होते नाहीं। ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि अभेद आत्माविषैं ज्ञानदर्शनादि भेद किए, सो तिनकौं भेदरूप ही न मानि लैनें। भेद तौ समझावनेके अर्थि हैं। निश्चयकरि आत्मा अभेद ही है। तिसहीकौं जीववस्तु मानना। संज्ञा संख्यादिकरि भेद कहे, सो कहनें मात्र ही है। परमार्थतें जुदे जुदे हैं नाहीं। ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि परद्रव्यका निमित्त मेटनेंकी अपेक्षा व्रत शील संयमादिककौं मोक्षमार्ग कह्या। सो इनहीकौं मोक्षमार्ग न मानि लेना। जातैं परद्रव्यका ग्रहण त्याग आत्माकै होय, तौ आत्मा परद्रव्यका कर्त्ता हर्त्ता होय। सो कोई द्रव्य कोई द्रव्यकै आधीन है नाहीं। तातैं आत्मा अपने

भाव रागादिक हैं, तिनकौं छोडि वीतरागी हो है । सो निश्चयकरि वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। वीतराग भावनिकैं अर व्रतादिकनिकैं कदाचित् कार्यकारणपनो हैं। तातैं व्रतादिककौं मोक्षमार्ग कहे; सो कहने मात्र ही हैं। परमार्थतैं बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नाहीं, ऐसा ही श्रद्धान करना। ऐसैं ही अन्यत्र भी व्यवहारनयका अंगीकार करना जानि लेना।

यहां प्रश्न—जो व्यवहारनय परकौं उपदेशविषै ही कार्यकारी है कि अपना भी प्रयोजन साधै है?

ताका समाधान—आप भी यावत् निश्चयनयकरि प्ररूपित वस्तुकौं न पहिचानैं, तावत् व्यवहार मार्गकरि वस्तुका निश्चय करै। तातैं नीचली दशाविषैं आपकौं भी व्यवहारनय कार्यकारी हैं। परन्तु व्यवहारकौं उपचार मात्र मानि वाकै द्वारि वस्तुका श्रद्धान ठीक करै, तौ कार्यकारी होय। बहुरि जो निश्चयवत् व्यवहार भी सत्यभूत मानि वस्तु ऐसैं ही हैं, ऐसा श्रद्धान करैं, तौ उलटा अकार्यकारी होय जाय। सो ही पुरुषार्थसिद्ध्युपायविषैं कह्या है—

अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति ।६।
माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीतसिंहस्य ।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य ।७।

इनका अर्थ—मुनिराज अज्ञानीके समझावनेकौं असत्यार्थ व्यवहारनय ताकौं उपदेशै है। जो केवल व्यवहारहीकौं जानै है, ताकौं उपदेश ही देना योग्य नाहीं है। बहुरि जैसैं जो सांचा सिंहकौं न जानै, ताकै बिलाव ही सिंह है, तैसै जो निश्चयकौं न जानै, ताकै व्यवहार ही निश्चयपणाकौं प्राप्त हो है।

तहां कोई निर्विचार पुरुष ऐसैं कहै—तुम व्यवहारकौ असत्यार्थ हेय कहो हौ, तौ हम व्रत शील संयमादिका व्यवहार कार्य काहेकौं करैं-सर्व छोडि देवैंगे। ताकौं कहिए है—किछू व्रत शील संयमादिकका नाम व्यवहार नाहीं है। इनकौं मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है, सो छोडि दे। बहुरि ऐसा श्रद्धानकरि जो इनकौं तौ बाह्य सहकारी जानि उपचारितैं मोक्षमार्ग कह्या है। ए तौ परद्रव्याश्रित हैं। बहुरि सांचा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है, सो स्वद्रव्याश्रित है। ऐसैं व्यवहारकौं असत्यार्थ हेय जानना। व्रतादिककौं छोडनेतैं तौ व्यवहारका हेयपना होता है नाहीं। बहुरि हम पूछैं हैं—व्रतादिककौं छोडि कहा करेगा। जो हिंसादिरूप प्रवर्त्तैगा, तौ तहां तो मोक्षमार्गका उपचार भी संभवै नाहीं। तहां प्रवर्त्तनेतैं कहा भला होयगा, नरकादिक पावैगा। तातैं ऐसैं करना, तौ निर्विचारपना है। बहुरि व्रतादिकरूप परिणति मेटि केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बनै, तो भलैं ही है। सो नीचली दशाविषैं होय सकै नाहीं। तातैं व्रतादिसाधन छोडि स्वच्छंद होना योग्य नाहीं। या

प्रकार श्रद्धानविषैं निश्चयकौं, प्रवृत्तिविषैं व्यवहारकौं, उपादेय मानना, सो भी मिथ्याभाव ही है।

बहुरि यहु जीव दोऊ नयनिका अंगीकार करनेके अर्थि कदाचित् आपकौं शुद्ध सिद्धसमान रागादिरहित केवलज्ञानादि-सहित आत्मा अनुभवै है, ध्यानमुद्रा धारि ऐसे विचारविषै लागै है। सो ऐसा आप नाहीं, परन्तु भ्रमकरि मैं ऐसा ही हौं, ऐसा मानि संतुष्ट हो है। कदाचित् वचनद्वारि निरूपण ऐसा ही करै है। सो निश्चय तो यथावत् वस्तुकौं प्ररूपै, प्रत्यक्ष जैसा आप नाहीं तैसा आपकौ मानना, सो निश्चय नाम कैसैं पावै। जैसा केवल निश्चयाभासवाला जीवकै पूर्वै अयथार्थपना कह्या था, तैसैं ही याकै जानना। अथवा यह ऐसें मानैं है, जो इस नयकरि आत्मा ऐसा है, इस नयकरि ऐसा है, सो आत्मा तौ जैसा है तैसा है ही, तिसविषैं नयकरि निरूपण करनेका जो अभिप्राय है, ताकौं न पहिचानैं है। जैसे आत्मा निश्चय करि तौ सिद्धसमान केवलज्ञानादिसहित द्रव्यकर्म—नोकर्म-भावकर्मरहित है, व्यवहारनयकरि संसारी मतिज्ञानादिसहित वा द्रव्यकर्म नोकर्म भावकर्मसहित है, ऐसा मानै है। सो एक आत्माके ऐसे दोय स्वरूप तौ होंय नाहीं। जिस भावहीका सहीतपना तिस भावहीका रहितपना एक वस्तुविषैं कैसैं संभवै? तातैं ऐसा मानना भ्रम है। तो कैसैं है जैसे राजा रंक मनुष्य पनेकी अपेक्षा समान है, तैसैं सिद्ध संसारी जीवत्वपनेकी अपेक्षा

समान कहै हैं। केवलज्ञानादि अपेक्षा समानता मानिए, सो है नाहीं। संसारीकै निश्चयकरि मतिज्ञानादिक ही हैं। सिद्धकै केवलज्ञान है। इतना विशेष है—संसारीकै मतिज्ञानादिक कर्मका निमित्ततैं है, तातैं स्वभाव अपेक्षा संसारीकै केवलज्ञानकी शक्ति कहिए तौ दोष नाहीं। जैसे एक मनुष्यकै राजा होनेकी शक्ति पाईए, तैसे यहु शक्ति जाननीं। बहुरि द्रव्यकर्म नोकर्म पुद्गलकरि निपजे हैं, तातैं निश्चयकरि संसारीकै भी इनका भिन्नपना है। परन्तु सिद्धवत् इनका कारण—कार्यसंबंध भी न मानै, तौ भ्रम ही है। बहुरि भावकर्म आत्माका भाव है, सो निश्चयकरि आत्माहीका है। कर्मके निमित्ततैं हो है, तातैं व्यवहारकरि कर्मका कहिए है। बहुरि सिद्धवत् संसारीकै भी रागादिक न मानना, कर्महीका मानना यहु भी भ्रम ही है। याहि प्रकारकरि नयकरि एक ही वस्तुकौं एक भाव अपेक्षा ऐसा भी मानना, ऐसा भी मानना, सो तौ मिथ्याबुद्धि है। बहुरि जुदे भावनिकी अपेक्षा नयनिकी प्ररूपणा है, ऐसे मानि यथासंभव वस्तुकौं मानना सो सांचा श्रद्धान है। तातैं मिथ्यादृष्टी अनेकांतरूप वस्तुकौं मानै, परन्तु यथार्थ भावकौं पहिचानि मानि सकै नाहीं, ऐसा जानना।

बहुरि इस जीवकै व्रत शील संयमादिकका अंगीकार पाईए है, सो व्यवहारकरि ए भी मोक्षके कारण हैं, ऐसा मानि तिनकौं उपादेय मानै हैं। सो जैसे केवलव्यवहारावलम्बी जीवकै

स्तोक रोग तौ निरोग होनेका कारण है नाहीं। इतना है स्तोक रोग रहैं निरोग होनेका उपाय करैं, तौ होइ जाय। बहुरि जो स्तोक रोगहीकौं भला जानि वाका राखनेका यत्न करै, तौ निरोग कैसैं होय। तैसैं कषायीकैं तीव्रकषायरूप अशुभोपयोग था, पीछैं मंदकषायरूप शुभोपयोग भया, तौ यह शुभोपयोग तौ नि कषाय शुद्धोपयोग होनेकौं कारण है नाहीं। इतना है— शुभोपयोग भए शुद्धोपयोगका यत्न करै, तौ होय जाय। बहुरि जो शुभोपयोगहीकौं भला जानि ताका साधन कियाकरै, तौ शुद्धोपयोग कैसैं होय। तातैं मिथ्यादृष्टीका शुभोपयोग तौ शुद्धोपयोगकौं कारण है नाहीं। सम्यग्दृष्टीकैं शुभोपयोग भए निकट शुद्धोपयोग प्राप्ति होय, ऐसा मुख्यपनाकरि कहीं शुभोपयोगकौं शुद्धोपयोगका कारण भी कहिए है ऐसा जानना। बहुरि यह जीव आपकौं निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्गका साधक मानैं है। तहां पूर्वोक्त प्रकार आत्माकौं शुद्ध मान्या, सो तौ सम्यग्दर्शन भया। तैसैं ही जान्या सो सम्यग्ज्ञान भया। तैसैं ही विचारविषैं प्रवर्त्या सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसैं तौ आपकैं निश्चय रत्नत्रय भया मानैं। सो मैं प्रत्यक्ष अशुद्ध सो शुद्ध कैसैं मानौं, जानौं, विचारौं हौं, इत्यादि विवेकरहित भ्रमतैं सतुष्ट हो है। बहुरि अरहंतादि बिना अन्य देवादिककौं न मानैं है, वा जैनशास्त्र अनुसार जीवादिके भेद सीख लिए हैं तिनहीकौं

मानै है औरकौं न मानैं, सो तौ सम्यग्दर्शन भया। बहुरि जैन-शास्त्रनिका अभ्यासविषैं बहुत प्रवर्त्तै है, सो सम्यग्ज्ञान भया। बहुरि व्रतादिरूप क्रियानिविषैं प्रवर्त्तै है, सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसें आपकै व्यवहार रत्नत्रय भया मानैं। सो व्यवहार तौ उपचारका नाम है। सो उपचार भी तौ तब बनै, जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयका कारणादिक होय। जैसें निश्चय रत्नत्रय सधै, तैसें इनकौं साधै, तौ व्यवहारपनौ भी सम्भवै। सो याकैं तौ सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयकी पहचानि ही भई नाहीं। यहु ऐसैं कैसैं साधि सकै। आज्ञाअनुसारी हुवा देख्यांदेखी साधन करै है। तातैं याकै निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग न भया। आगैं निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गका निरूपण करेंगे, ताका साधन भए ही मोक्षमार्ग होगा। ऐसें यहु जीव निश्चयाभासकौं मानैं जानैं है। परन्तु व्यवहार साधनकौं भी भला जानैं है, तातैं स्वच्छन्द होय अशुभरूप न प्रवर्त्तै है। व्रतादिक शुभोपयोगरूप प्रवर्त्तै है, तातैं अंतिम ग्रैवेयक पर्यंत पदकौं पावै है। बहुरि जो निश्चयाभासकी प्रबलतातैं अशुभरूप प्रवृत्ति होय जाय, तौ कुगतिविषैं भी गमन होय, परिणामनिकै अनुसारि फल पावै है। परन्तु संसारका ही भोक्ता रहै है। सांचा मोक्षमार्ग पाए बिना सिद्धपदकौं न पावै है। ऐसैं निश्चयाभास व्यवहाराभास दोऊनिके अवलम्बी मिथ्यादृष्टी तिनिका निरूपण किया।

स्तोक रोग तौ निरोग होनेका कारण है नाहीं। इतना है स्तोक रोग रहैं निरोग होनेका उपाय करै, तौ होइ जाय। बहुरि जो स्तोक रोगहीकौं भला जानि ताका राखनेका यत्न करै, तौ निरोग कैसैं होय। तैसैं कषायीकै तीव्रकषायरूप अशुभोपयोग था, पीछैं मंदकषायरूप शुभोपयोग भया, तौ वह शुभोपयोग तौ निःकषाय शुद्धोपयोग होनेकौं कारण है नाहीं। इतना है—शुभोपयोग भए शुद्धोपयोगका यत्न करै, तौ होय जाय। बहुरि जो शुभोपयोगहीकौं भला जानि ताका साधन किया करै, तौ शुद्धोपयोग कैसैं होय। तातैं मिथ्यादृष्टीका शुभोपयोग तौ शुद्धोपयोगकौं कारण है नाहीं। सम्यग्दृष्टीकै शुभोपयोग भए निकट शुद्धोपयोग प्राप्ति होय, ऐसा मुख्यपनाकरि कहीं शुभोपयोगकौं शुद्धोपयोगका कारण भी कहिए है ऐसा जानना। बहुरि यह जीव आपकौं निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्गका साधक मानै है। तहां पूर्वोक्त प्रकार आत्माकौं शुद्ध मान्या, सो तौ सम्यग्दर्शन भया। तैसैं ही जान्या सो सम्यग्ज्ञान भया। तैसैं ही विचारविषैं प्रवर्त्या सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसैं तौ आपकै निश्चय रत्नत्रय भया मानै। सो मैं प्रत्यक्ष अशुद्ध सो शुद्ध कैसैं मानौं, जानौं, विचारौं हौं, इत्यादि विवेकरहित भ्रमतैं संतुष्ट हो है। बहुरि अरहंतादि बिना अन्य देवादिककौं न मानैं है, वा जैनशास्त्र अनुसार जीवादिके भेद सीख लिए हैं तिनहीकौं

न है औरकौं न मानैं, सो तौ सम्यग्दर्शन भया। बहुरि जैन-
स्त्रनिका अभ्यासविषै बहुत प्रवर्त्तै है, सो सम्यग्ज्ञान भया।
रि व्रतादिरूप क्रियानिविषै प्रवर्त्तै है, सो सम्यक्‌चारित्र भया।
आपकै व्यवहार रत्नत्रय भया मानै। सो व्यवहार तौ उप-
रका नाम है। सो उपचार भी तौ तब बनै, जब सत्यभूत
श्चय रत्नत्रयका कारणादिक होय। जैसैं निश्चय रत्नत्रय
, तैसैं इनकौं साधै, तौ व्यवहारपनो भी सम्भवै। सो याकैं तौ
यभूत निश्चय रत्नत्रयकी पहचानि ही भई नाहीं। यहु ऐसैं
सैं साधि सकै। आज्ञाअनुसारी हुवा देख्यांदेखी साधन करै
। तातैं याकै निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग न भया। आगैं
श्चय व्यवहार मोक्षमार्गका निरूपण करेंगे, ताका साधन भए
मोक्षमार्ग होगा। ऐसैं यहु जीव निश्चयाभासकौं मानै जानै
। परन्तु व्यवहार साधनकौं भी भला जानै है, तातैं स्वच्छन्द
अशुभरूप न प्रवर्त्तै है। व्रतादिक शुभोपयोगरूप प्रवर्त्तै है,
तातैं अंतिम ग्रैवेयक पर्यंत पदकौं पावै है। बहुरि जो निश्चय
ामकी प्रबलतातैं अशुभरूप प्रवृत्ति होय जाय, तौ कुगति
ी गमन होय, परिणामनिकै अनुसारि फल पावै है।
संसारका ही भोक्ता रहै है। सांचा मोक्षमार्ग पाए बिना
पदकौं न पावै है। ऐसैं निश्चयाभास व्यवहाराभास
अवलम्बी मिथ्यादृष्टी तिनिका निरूपण किया।

## [ सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टि ]

अब सम्यक्त्वको सन्मुख जे मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण कीजिए है—

कोई मंदकषायादिकका कारण पाय ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम भया, तातैं तत्त्वविचार करनेकी शक्ति भई। अर मोह मंद भया, तातैं तत्त्वादिविचारविषैं उद्यम भया। बहुरि बाह्य निमित्त देव, गुरु, शास्त्रादिकका भया, तिनकरि सांचा उपदेशका लाभ भया। तहां अपने प्रयोजनभूत मोक्षमार्गका, वा देवगुरुधर्मादिकका वा जीवादि तत्त्वनिका, वा आपा परका, वा आपकौं अहितकारी हितकारी भावनिका, इत्यादिकका उपदेशतैं सावधान होय, ऐसा विचार किया—अहो मुझकौं तौ इनि बात-निकी खबरि नाही, मैं भ्रमतैं भूलि पर्याय हीविषैं तन्मय भया। सो इस पर्यायकी तौ थोरे ही कालकी स्थिति है। बहुरि यहां मोकौं सर्व निमित्त मिले हैं। तातै मोकौं इन बातनिका ठीक करना। जातैं इनविषैं तौ मेरा ही प्रयोजन भासै है। ऐसैं विचारि जो उपदेश सुन्या ताका निर्द्धार करनेका उद्यम किया। तहां उद्देश, लक्षणनिर्देश, परीक्षाद्वारकरि तिनका निर्द्धार होय। तातैं पहलै तौ तिनके नाम सीखै, सो उद्देश भया। बहुरि तिनके लक्षण जानैं। बहुरि ऐसैं सम्भवै है कि नाहीं, ऐसा विचारलिए परीक्षा करने लगै। तहां नाम सीख लेना अर लक्षण जानि लेना ये दोऊ तौ उपदेशके अनुसार हो है। जैसे उपदेश दिया

तैसैं याद करि लेना बहुरि परीक्षा करनें [illegible]
चाहिए है। सो विवेककरि एकांत [illegible]
जैसैं उपदेश दिया तैसैं ही है कि अन्यथा है [illegible]
प्रमाणकरि ठीक करै, वा उपदेशकौं [illegible]
तौ ऐसैं होय। सो इनविषै प्रबल युक्ति [illegible]
कौन है जो प्रबल भासै, ताकौं [illegible]
अन्यथा सांच भासै, वा संदेह रहै [illegible]
विशेष ज्ञानी होय तिनकौं पूछै [illegible]
विचारै ऐसैं ही यावत् निर्धार न होय [illegible]
अथवा समान बुद्धिके धारक होय, [illegible]
भया होय तैसा कहै। प्रश्न उत्तरकरि [illegible]
जो प्रश्नोत्तरविषैं निरूपण भया होय, [illegible]
याही प्रकार अपने अंतरंगविषै [illegible]
निर्णय होय भाव न भासै, तावत् [illegible] करै।
बहुरि अन्यमतीनिकरि कल्पित [illegible] देता है,
ताकरि जैन उपदेश अन्यथा भासै, [illegible] भी पूर्वोक्त
प्रकारकरि उद्यम किए जैसैं [illegible] हैं तैसे ही [illegible]
है मुझकौं भी ऐसे ही भासै है, [illegible] होय। जातैं [illegible]
देव अन्यथावादी हैं नाहीं।

यहां कोऊ कहै—[illegible] नाहीं है।

उनका उपदेश है, तैसें श्रद्धानकरि लीजिए, परीक्षा काहेकौं कीजिए ?

ताका समाधान—परीक्षा किए बिना यहु तौ मानना होय, जो जिनदेव ऐसें कह्या है, सो सत्य है। परन्तु उनका भाव आपकौं भासै नाहीं। बहुरि भाव भासे बिना निर्मल श्रद्धान न होय। जाकी काहूका वचनहीकरि प्रतीति करिए, ताकी अन्यका वचनकरि अन्यथा भी प्रतीति होय जाय, तौ शक्तिअपेक्षा वचनकरि कीन्हीं प्रतीति अप्रतीतिवत् है। बहुरि जाका भाव भास्या होय, ताकौं अनेक प्रकारकरि भी अन्यथा न मानै। तातें भाव भासें प्रतीति होय सोई सांची प्रतीति है। बहुरि जो कहौगे, पुरुषप्रमाणतें वचनप्रमाण कीजिए है, तौ पुरुषकी भी प्रमाणता स्वयमेव न होय। वाके केई वचननिकी परीक्षा पहलें करि लीजिये, तब पुरुषकी प्रमाणता होय।

यहां प्रश्न—उपदेश तौ अनेक प्रकार, किस किसकी परीक्षा करिये ?

ताका समाधान—उपदेशविर्षें केई उपादेय केई हेय केई ज्ञेय तत्व निरूपिये है। तहां उपादेय हेय तत्त्वनिकी तौ परीक्षा करि लेना। जातें इन विर्षें अन्यथापनों भये अपना बुरा हो है। उपादेयकौं हेय मानि लें, तौ बुरा होय, हेयकौं उपादेय मानि लै तौ बुरा होय।

बहुरि जो कहौगा, आप परीक्षा न करी, अर जिनवचन

हातैं उपादेयकौं उपादेय जानैं, हेयकौं हेय जानैं, तो कैसै बुरा होय ?

ताका समाधान—अर्थका भाव भासें विना वचनका अभिप्राय न पहिचानैं। यहु तौ मानि ले, जो मैं जिन वचन अनुसारि मानौं हौं। परन्तु भाव भासे विना अन्यथापनो होय जाय। लोकविषैं भी किंकरकौं किसी कार्यकौं भेजिये सो वह उस कार्यका भाव जानैं, तौ कार्यकौ सुधारै, जो भाव न भासै, तो कहीं चूकि ही जाय। तातैं भाव भासनेकै अर्थि हेय उपादेय तत्त्वनिकी परीक्षा अवश्य करनी।

बहुरि वह कहै, है—जो परीक्षा अन्यथा होय जाय, तौ कहा करिये ?

ताका समाधान—जिनवचन अर अपनी परीक्षा इनकी समानता होय, तब तौ जानिये सत्य परीक्षा भई। यावत् ऐसैं न होय तावत् जैस कोई लेखा करै है, ताकी विधि न मिलै तावत् अपनी चूककौं ढूंढै। तैसैं यह अपनी परीक्षाविषैं विचार किया करै। बहुरि जो ज्ञेयतत्त्व हैं, तिनकी परीक्षा होय सकै, तौ परीक्षा करै। नाहीं, यह अनुमान करै, जो हेय उपादेय तत्त्व ही अन्यथा न कहे, तौ ज्ञेयतत्त्व अन्यथा किसै अर्थ कहे। जैसे कोऊ प्रयोजनरूप कार्यनिविषैं झूठ न बोलै, सो अप्रयोजन विषैं झूठ काहेकौं बोलै। तातैं ज्ञेयतत्त्वनिका परीक्षाकरि भी वा आज्ञाकरि स्वरूप जानिये। तिनका

यथार्थ स्वरूप न भासै, तौ भी दोष नाहीं। याहीतैं जैन शास्त्रीविषैं तत्वनिदिकका निरूपण किया, तहां तौ हतु युक्ति आदिकरि जैसैं याके अनुमानादिकरि प्रतीति आवै, तैसैं कथन किया। बहुरि त्रिलोक, गुणस्थान, मार्गणा, पुराणादिकका कथन आज्ञा अनुसारि किया। तातैं हेयोपादेय तत्वनिकी परीक्षा करनी योग्य है। तहां जीवादिक द्रव्य वा तत्व तिनकौं पहिचानना। बहुरि त्यागनें योग्य मिथ्यात्व रागादिक, अर ग्रहणें योग्य सम्यग्दर्शनादिक तिनका स्वरूप पहिचानना। बहुरि निमित्त नैमित्तादिक जैसैं हैं, तैसैं पहिचानना। इत्यादि मोक्षमार्ग विषैं जिनके जानें प्रवृत्ति होय, तिनकौं अवश्य जाननैं। सो इनकी तौ परीक्षा करनी। सामान्यपनै हेतु युक्ति करि इनकौं जाननैं, वा प्रमाण नयनिकरि जाननैं वा निर्देश स्वाम्यत्वादिकरि, वा सत् सख्यादि करि इनका विशेष जानना जैसी बुद्धि होय जैसा निमित्त बनै, तैसैं इनिकौं सामान्य विशेषरूप पहचाननैं। बहुरि इस जाननैंका उपकारी गुणस्थान मार्गणादिक वा पुराणादिक, वा व्रतादिक क्रियादिकका भी जानना योग्य है। यहां परीक्षा होय सकै, तिनकी परीक्षा करनी, न होय सकै ताका आज्ञा अनुसारि जानपना करना ऐसैं [illegible] जाननेंके अर्थ कबहूं आपही विचार करै है, कबहूं शास्त्र बांचै है, कबहूं सुनैं है, कबहू अभ्यास करै है, कबहूं प्रश्नोत्तर करै है। इत्यादि रूप प्रवर्तै है। अपना कार्य करनें

कार्यकारी बहुत है, तातैं अंतरंग प्रीतितैं ताका साधन करै। या प्रकार साधन करतैं यावत् सांचा तत्त्वश्रद्धान न होय, 'यहु ऐसे ही है' ऐसी प्रतीति लिये जीवादि तत्त्वनिका स्वरूप आपकौं न भासै, जैसे पर्यायविषै अहंबुद्धि है, तैसें केवल आत्मविषै अहंबुद्धि न आवै, हित अहितरूप अपने भाव न पहिचानैं, तावत् सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टी है। यह जीव थोरे ही काल मैं सम्यक्त्वकौं प्राप्त होगा। इस ही भवमैं वा अन्य पर्यायविषैं सम्यक्त्वकौं पावैगा। इस भवमैं अभ्यासकरि परलोकविषैं तिर्यंचादिगतिविषै भी जाय—तौ तहां संस्कारके बलतैं देव गुरु शास्त्रका निमित्तबिना भी सम्यक्त्व होय जाय। जातैं ऐसे अभ्यासके बलतैं मिथ्यात्वकर्मका अनुभाग हीन हो है। जहां याका उदय न होय, तहां ही सम्यक्त्व होय जाय। मूलकारण यहु ही है। देवादिकका तौ बाह्य निमित्त हैं, सो मुख्यताकरि तौ इनके निमित्तहीतैं सम्यक्त्व हो है। तारतम्यतैं पूर्व अभ्यास संस्कारतैं वर्त्तमान इनका निमित्त न होय, तौ भी सम्यक्त्व होय सकै है। सिद्धांतविषै ऐसा सूत्र कह्या है—

"तन्निसर्गादधिगमाद्वा" [तत्त्वा० सू० १,३

याका अर्थ यहु—सो सम्यग्दर्शन निसर्ग वा अधिगमतैं हो है। तहां देवादिक बाह्य निमित्त बिना होय, सो निसर्गतैं भया कहिए। देवादिकका निमित्ततैं होय, सो अधिगमतैं भया कहिए। देखो तत्त्वविचारकी महिमा, तत्त्वविचाररहित देवादिक-

की प्रतीति करै, बहुत शास्त्र अभ्यासै, व्रतादिक धारै
णादि करै, ताकै तौ सम्यक्त होनेका अधिकार
तत्त्वविचारवाला इन बिना भी सम्यक्तका अधिकारी
बहुरि कोई जीवकै तत्त्वविचारकै होनें पहलै किसी
देवादिककी प्रतीति होय, वा व्रत तपका अंगीकार
तत्त्वविचार करै। परन्तु सम्यक्तका अधिकारी तत्त्वि
ही हो है। बहुरि काहूकै तत्त्वविचार भए पीछै तत्त्व
होनेतैं सम्यक्त तौ न भया, अर व्यवहार धर्मकी प्रत
होय गई, तातैं देवादिककी प्रतीति करै है, वा व्रत तप
कार करै है, काहूकै देवादिककी प्रतीति अर सम्यक्त
होय, अर व्रत तप सम्यक्तकी साथि भी होय, अर प
भी होय, देवादिककी प्रतीतिका तौ नियम है। इ
सम्यक्त न होय। व्रतादिकका नियम है नाहीं। घनें
पहलैं सम्यक्त होय पीछैं ही व्रतादिककौं धारैं है। काह
पत् भी होय जाय है। ऐसैं यहु तत्त्वविचारवाला जीव स
अधिकारी है। परन्तु याकै सम्यक्त होय ही होय, ऐसा
नाहीं। जातैं शास्त्रविषै सम्यक्त होनेतैं पहलैं पंच ल
होना कहा है—

[ पंच लब्धियोंका स्वरूप ]

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, करण। तहां
होते संतैं तत्त्वविचार होय सकै, ऐसा ज्ञानावरणादि क

क्षयोपशम होय। उदयकालकौं प्राप्त सर्वघाती स्पर्द्धकनिके निषेकनिका उदयका अभाव सो क्षय, अर अनागतकालविर्षे उदय आवने योग्य तिनहीका सत्तारूप रहना सो उपशम, ऐसी देशघाती स्पर्द्धकनिका उदय सहित कर्मनिकी अवस्था ताका नाम क्षयोपशम है। ताकी प्राप्तिसो क्षयोपशमलब्धि है। बहुरि मोहका मंद उदय आवनेतैं मंदकषाय रूप भाव होंय, तहां तत्त्वविचार होय सकै, सो विशुद्धलब्धि है। बहुरि जिनदेवका उपदेश्या तत्त्वका धारण होय, विचार होय सो देशनालब्धि है। जहां नरकादिविर्षे उपदेशका निमित्त न होय, तहां पूर्वसंस्कारतैं होय। बहुरि कर्मनिकी पूर्व सत्ता घटकरि अंत कोटाकोटी सागरप्रमाण रहि जाय, अर नवीन बंध अंत कोटाकोटी प्रमाण ताकै संख्यातवैं भागमात्र होय, सो भी तिस लब्धिकालतैं लगाय क्रमतैं घटता होय, केतीक पापप्रकृतिनिका बंध क्रमतैं मिटता जाय, इत्यादि योग्य अवस्थाका होना, सो प्रायोग्यलब्धि है। सो ए च्यारौं लब्धि भव्य वा अभव्यकै होय है इन च्यार लब्धि भये पीछैं सम्यक्त होय वा होय न होय वा नाहीं भी होय। ऐसें लब्धिसारविर्षे कह्या है।* तातें तिस तत्त्वविचारवालाकै सम्यक्त्व होनेका नियम नाहीं। जैसैं काहूकौं हितकी शिक्षा दई, ताकौं यह जानि विचार करै, यह सीख दई सो कैसैं है? पीछैं विचारतां वाकै ऐसें ही है, ऐसी प्रतीति होय जाय। अथवा

* लब्धि० ३

की प्रतीति करै, बहुत शास्त्र अभ्यासै, व्रतादिक पालै तपश्चरणादि करै, ताकै तौ सम्यक्त होनेका अधिकार नाहीं। अर तत्त्वविचारवाला इन बिना भी सम्यक्तका अधिकारी हो है। बहुरि कोई जीवकै तत्त्वविचारिकै होनै पहलै किसी कारण पाय देवादिककी प्रतीति होय, वा व्रत तपका अंगीकार होय, पीछै तत्त्वविचार करै। परन्तु सम्यक्तका अधिकारी तत्त्वविचार भये ही हो है। बहुरि काहूकै तत्त्वविचार भए पीछैं तत्त्वप्रतीति न होनेतै सम्यक्त तौ न भया, अर व्यवहार धर्मकी प्रतीति रुचि होय गई, तातै देवादिककी प्रतीति करै है, वा व्रत तपकौं अंगीकार करै है, काहूकै देवादिककी प्रतीति अर सम्यक्त युगपत् होय, अर व्रत तप सम्यक्तकी साथि भी होय, अर पहलै पीछैं भी होय, देवादिककी प्रतीतिका तौ नियम है। इस बिना सम्यक्त न होय। व्रतादिकका नियम है नाहीं। घनें जीव तौ पहलै सम्यक्त होय पीछै ही व्रतादिककौ धारै है। काहूकै युगपत् भी होय जाय है। ऐसैं यहु तत्त्वविचारवाला जीव सम्यक्तका अधिकारी है। परन्तु याकै सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम नाहीं। जातै शास्त्रविषै सम्यक्त होनेतै पहलै पंच लब्धिका होना कह्या है—

## [ पंच लब्धियोंका स्वरूप ]

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, करण। तहां जिसकौं होते संतै तत्त्वविचार होय सकै, ऐसा ज्ञानावरणादि कर्मनिका

क्षयोपशम होय। उदयकालकौं प्राप्त सर्वघाती स्पर्द्धकनिके निषेकनिका उदयका अभाव सो क्षय, अर अनागतकालविषैं उदय आवने योग्य तिनहीका सत्तारूप रहना सो उपशम, ऐसी देशघाती स्पर्द्धकनिका उदय सहित कर्मनिकी अवस्था ताका नाम क्षयोपशम है। ताकी प्राप्तिसो क्षयोपशमलब्धि है। बहुरि मोहका मंद उदय आवनेतैं मंदकषाय रूप भाव होय, तहां तत्त्वविचार होय सकै, सो विशुद्धलब्धि है। बहुरि जिनदेवका उपदेश्या तत्त्वका धारण होय, विचार होय सो देशनालब्धि है। जहां नरकादिविषैं उपदेशका निमित्त न होय, तहां पूर्वसंस्कारतैं होय। बहुरि कर्मनिकी पूर्व सत्ता घटकरि अंत कोटाकोटी सागरप्रमाण रहि जाय, अर नवीन बंध अंत कोटाकोटी प्रमाण ताकै संख्यातवैं भागमात्र होय, सो भी तिस लब्धिकालतैं लगाय क्रमतैं घटता होय, केतीक पापप्रकृतिनिका बंध क्रमतैं मिटता जाय, इत्यादि योग्य अवस्थाका होना, सो प्रायोग्यलब्धि है। सो ए च्यारौं लब्धि भव्य वा अभव्यकै होय है इन च्यार लब्धि भये पीछै सम्यक्त्व होय तौ होय न होय तौ नाहीं भी होय। ऐसैं लब्धिसारविषैं कह्या है।* तातैं तिस तत्त्वविचारवालाकै सम्यक्त्व होनेंका नियम नाहीं। जैसैं काहूकौं हितकी शिक्षा दई ताकौं वह जानि विचार करै, यहु शिक्षा दई सो कैसे है? पीछैं विचारतां वाकै ऐसैं ही है, ऐसी प्रतीति होय जाय।

* लब्धि० ३

अन्यथा विचार होय, वा अन्य विचारविषैं लागि, तिस सीखका निर्द्धार न करै, तौ प्रतीति नाहीं भी होय। तातैं श्रीगुरौं तत्त्वोपदेश दिया, ताकौं जानि विचारि करै, यहु उपदेश दिया, सो कैसें है। पीछें विचार करनेतैं वाकै ऐसें ही है, ऐसी प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय, वा अन्य विचारविषैं लागि तिस उपदेशका निर्द्धार न करै, तो प्रतीति नाहीं होय। ऐसा नियम है। याका उद्यम तौ तत्त्वविचार करनें मात्र ही है। बहुरि पांचई करणलब्धि भए सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम है। सो जाकैं पूर्वै कही थी च्यारि लब्धि ते तौ भई होंय, अर अंतर्मुहूर्त पीछें जाकै सम्यक्त होना होय, तिसही जीवकै करणलब्धि हो है। सो इस करणलब्धिवालाकै बुद्धिपूर्वक तौ इतना ही उद्यम हो है—जिस तत्त्वविचारविषै उपयोगकौं तद्रूप होय लगावै, ताकरि समय समय परिणाम निर्मल होते जाय हैं। जैसैं काहूकैं सीखका विचार ऐसा निर्मल होनें लग्या, जाकरि याकैं शीघ्र ही ताकी प्रतीति होय जासी। तैसें तत्त्वउपदेश ऐसा निर्मल होनें लग्या, जाकरि याकै शीघ्रही ताका श्रद्धान होसी। बहुरि इन परिणामनिका तारतम्य केवलज्ञानकरि देख्या, ताकरि निरूपण करणानुयोगविषैं किया है। सो इस करणलब्धिकै तीन भेद हैं—अध करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण। इनका विशेष व्याख्यान तौ लब्धिसार शास्त्रविषै किया है, तिसतैं जानना। यहां संक्षेपसौं कहिए है—

त्रिकालवर्ती सर्व करणलब्धिवाले जीव तिनके परिणाम निकी अपेक्षा ए तीन नाम हैं। तहां करण नाम तौ परिणामका है। बहुरि जहां पहले पिछले समयनिके परिणाम समान होंय, सो अधःकरण है। * जैसें कोई जीवका परिणाम तिस करणके पहिले समय स्तोक विशुद्धता लिए भए, पीछैं समय समय अनंत गुणी विशुद्धताकरि बधते भए। बहुरि ताकै जैसें द्वितीय तृतीयादि समयनिविषै परिणाम होंय, तैसें केई अन्य जीवनिकै प्रथम समयविषै ही होंय। ताकै तिसतै समय समय अनंती विशुद्धताकरि बधते होंय। ऐसें अधः प्रवृत्तकरण जानना। बहुरि जिसविषै पहले पिछले समयनिके परिणाम समान न होंय, अपूर्व ही होंय (सो अपूर्वकरण है।) जैसें तिस करणके परिणाम जैसे पहले समय होंय तैसें कोई ही जीवकै द्वितीयादि समयनिविषै न होंय बधते ही होंय। बहुरि इहां अधःकरणवत् जिन जीवनिकै करणका पहला समय ही होय, तिन अनेक जीवनिकै परस्पर परिणाम समान भी होंय, अर अधिक हीन विशुद्धता लिए भी होंय। परन्तु यहां इतना विशेष भया, जो इसकी उत्कृष्टतातै भी द्वितीयादि समयवालेका जघन्य परिणाम भी अनंतगुणी विशुद्धता लिए ही होय। ऐसें ही जिनकौं करण माडे द्वितीयादि समय भया होय, तिनकै तिस समयवालोंकै तौ परस्पर परिणाम समान वा असमान होंय। परन्तु ऊपरले समयवालोंकै

१ लब्धि० ३५

तिन समय समान सर्वथा न होय अपूर्व ही होय, ऐसे अपू
करण¹ जानना। बहुरि जिनविषै समान समयवर्ती जीवनि
परिणाम समान ही होंय, निवृत्ति कहिए परस्पर भेद ताक
रहित होय। जैसे तिस करणका पहला समयविषै सर्व जीवनि
परिणाम परस्पर समान ही होय, ऐसे ही द्वितीयादि समय
विषै समानता परस्पर जाननी। बहुरि प्रथमादि समयवाल
द्वितीयादि समयवालोंकै अनंतगुणी विशुद्धता लिए होय,
अनिवृत्तिकरण² जानना। ऐसे ए तीन करण जानने।
पहलें अंतर्मुहूर्त काल पर्यंत अध करण होय। तहां च्यारि आ
श्यक हो हैं। समय समय अनंतगुणी विशुद्धता होय, बहुरि
अंतर्मुहूर्त करि नवीन बंधकी स्थिति घटती होय, सो स्थि
बंधापसरण होय, बहुरि समय समय प्रशस्त प्रकृतिनिका अ
गुणा अनुभाग बंध, बहुरि, समय समय अप्रशस्त प्रकृतिनि
अनुभागबंध अनंतवें भाग होय, ऐसे च्यारि आवश्यक हो
तहां पीछें अपूर्वकरण होय। ताका काल अध करणकै का

---

१—समए समए भिण्णा भावा तम्हा अपुव्वकरणो हु।
जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं णत्थि सरिसत्तं।
तम्हा बिदियं करणं अपुव्वकरणेत्ति णिद्दिट्ठं ॥ लब्धि० ५१ ॥ करणं परि
अपुव्वाणि च ताणि करणाणि च अपुव्वकरणाणि असमाणपरिणामा त्ति ज
होदि। धवला १ ९ ८ ४

२—एगसमए वट्टमाणं जीवाणं परिणामेहि ण विज्जदे णियट्टी णि
त्थ ते अणियट्टीपरिणामा। धवला १ ९ ८ ४। एकम्हि कालसमये संठ
जह णिवट्टंति। ण णिवट्टंति तहा विय परिणामेहिं मिहो जेहिं॥ गो० जी

सख्यातवें भाग है। ताविषै ए आवश्यक और होय। एक
अन्तर्मुहूर्त करि सत्ताभूत पूर्वकर्मकी स्थिति थी, ताकौ घटा
स्थितिकांडकघात होय। बहुरि तिसतैं स्तोक एक एक
मुहूर्त करि पूर्वकर्मका अनुभागकौं घटावै, सो अनुभाग
घात होय, बहुरि गुणश्रेणिका कालविषैं क्रमतैं असंख्या
प्रमान लिए कर्म निर्जरने योग्य कहिए, सो गुणश्रेणी
होय। बहुरि गुणसंक्रमण यहां नाहीं हो है। अन्यत्र अपूर्व
हो है, यहां हो है। ऐसें अपूर्वकरण भए पीछें अनिवृत्ति
होय। ताका काल अपूर्वकरणके भी संख्यातवें भाग है।
विषै पूर्वोक्त आवश्यक सहित केता काल गए पीछैं अन्तर
करै है। अनिवृत्ति करणके काल पीछैं उदय आवने योग्य
मिथ्यात्वकर्मके मुहूर्तमात्र निषक तिनिका अभाव करै है,
परिणामनिकौं अन्य स्थितिरूप परिणमावै है बहुरि अन्त
णकरि पीछैं उपशमकरण करै है। अन्तरकरणकरि अभ
किए निषेकनिके ऊपरि जो मिथ्यात्वके निषेक तिनकौं
आवनेंकौ अयोग्य करै है। इत्यादिक क्रियाकरि अनिवृत्ति

१ किमन्तरकरण णाम? विवक्खियकम्माण हेट्ठिमोवरिमट्ठिदीओ
मज्झे अन्तोमुहुत्तमेत्ताण ट्ठिदीण परिणामविसेसेण णिसेगाणमभावीकरण
करणमिदि भण्णदे। जयध अ प० १५

अथ—अन्तकरणका क्या स्वरूप है? उत्तर—'विवक्षितकर्मोंकी

का अतसमयके अनतर जिन निषेकनिका अभाव किया था, तिनका उदयकाल आया तब निषेकनि विना उदय कौनका आवै। तातैं मिथ्यात्वका उदय न होनेतैं प्रथमोपशम सम्यक्तकी प्राप्ति हो है। अनादि मिथ्यादृष्टीकै सम्यक्तमोहनीय, मिश्रमोहनीयकी सत्ता नाहीं है। तातैं एक मिथ्यात्वकर्महीकौं उपशमाय उपशमसम्यग्दृष्टी होय है। बहुरि कोई जीव सम्यक्त पाय पीछैं भ्रष्ट हो है, ताकी भी दशा अनादिमिथ्यादृष्टीकी सी ही होय जाय है।

यहां प्रश्न—जो परीक्षाकरि तत्त्वश्रद्धान किया था, ताका अभाव कैसैं होय ?

ताका समाधान—जैसैं किसी पुरुषकौं शिक्षा दई, ताकी परीक्षाकरि वाकै ऐसैं ही है, ऐसी प्रतीति भी आई थी, पीछैं अन्यथा कोई प्रकारकरि विचार भया तातैं उस शिक्षाविषैं संदेह भया। ऐसैं है कि ऐसैं है, अथवा 'न जानौं कैसैं है', अथवा तिस शिक्षाकौं झूठ जानि तिसतैं विपरीत भई, तब वाकै प्रतीति न भई तब वाकै तिस शिक्षाकी प्रतीतिका अभाव होय, अथवा पूर्वैं तौ अन्यथा प्रतीति थी ही, बीचिमैं शिक्षाका विचारतैं यथार्थ प्रतीति भई थी, बहुरि तिस शिक्षाका विचार किए बहुत काल होय गया, तब ताकौं भूलि जैसैं पूर्वैं अन्यथा प्रतीति थी, तैसैं ही स्वयमेव होय गई। तब तिस शिक्षाकी प्रतीतिका अभाव होय जाय। अथवा यथार्थ प्रतीति पहलैं तौ कीन्हीं,

पाछैं न तौ किछू अन्यथा विचार किया, न बहुत काल भया। परन्तु तैसा ही कर्म उदयतैं होनहारकै अनुसारि स्वयमेव ही तिस प्रतीतिका अभाव होय, अन्यथापना भया। ऐसैं अनेक प्रकार तिस शिक्षाकी यथार्थ प्रतीतिका अभाव हो है। तैसैं जावकै जिनदेवका तत्त्वादिरूप उपदेश भया, ताकि परीक्षाकरि याकै 'ऐसैं ही हैं' ऐसा श्रद्धान भया, पीछे पूर्वं जैसैं कह तैसैं अनेक प्रकार तिस पदार्थश्रद्धानका अभाव हो है। सो यहु कथन स्थूलपनैं दिखाया है। तारतम्यकरि केवलज्ञानविषै भासै है—इस समय श्रद्धान है, कि इस समय नाहीं है। जातैं यहां मूल कारण मिथ्यात्वकर्म है। ताका उदय होय, तब तौ अन्य विचारादिक कारण मिलौ, वा मति मिलौ, स्वयमेव सम्यक्श्रद्धानका अभाव हो है। बहुरि ताका उदय न होय, तब अन्य कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यक्श्रद्धान होय जाय है। सो ऐसी अंतरंग समयसमयी सूक्ष्मदशाका जानना, छद्मस्थकै होता नाहीं। तातैं अपनी मिथ्या सम्यक्-श्रद्धानरूप अवस्थाका तारतम्य याकौ निश्चय होय सकै नाहीं। केवलज्ञानविषै भासै है। तिस अपेक्षा गुणस्थाननिकी पलटनि शास्त्रविषै कही है। या प्रकार जो सम्यक्तैं भ्रष्ट होय, सो सादिमिथ्यादृष्टी कहिए। ताकै भी बहुरि सम्यक्त्वकी प्राप्ति विषैं पूर्वोक्त पांच लब्धि हो है। विशेष इतना यहां कोई जीवकै दर्शनमोहकी तीन प्रकृतिकी सत्ता हो है सो तिनकौं उपशमाय

प्रथमोपशम सम्यक्ती हो है। अथवा काहूकै सम्यक्त्तमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनिका उदय न हो है, सो क्षयोपशम-सम्यक्ती हो है। याकै गुणश्रेणी आदि क्रिया न हो है। या अनिवृत्तिकरण न हो है। बहुरि काहूकै मिश्रमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनिका उदय न हो है। सो मिश्रगुणस्थान-कौं प्राप्त हो है याकै करण न हो है। ऐसे सादिमिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्व छूटै दशा हो है। क्षायिकसम्यक्तकौं वेदकसम्यग्दृष्टी ही पावै है तातैं ताका कथन यहां न किया है। ऐसैं सादि मिथ्यादृष्टीका जघन्य तौ मध्य अन्तर्मुहूर्तमात्र, उत्कृष्ट किंचि दून अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र काल जानना। देखो, परिणाम निकी विचित्रता कोई जीव तौ ग्यारवें गुणस्थान यथाख्यात-चारित्र पाय बहुरि मिथ्यादृष्टी होय किंचित् ऊन अर्द्धपुद्गल परिवर्तन कालपर्यंत संसारमैं रुलै, अर कोई नित्यनिगोदमैंसौं निकसि मनुष्य होय, मिथ्यात्व छूटे पीछैं अन्तर्मुहूर्तमैं केवलज्ञान पावै। ऐसैं जानि अपने परिणाम बिगरनेका भय राखना। अर तिनके सुधारनेका उपाय करना।

बहुरि इस सादिमिथ्यादृष्टीकै थोरे काल मिथ्यात्वका उदय रहै, तौ बाह्य जैनीपना नाहीं नष्ट हो है। या तत्त्वनिका अश्रद्धान व्यक्त न हो है। या बिना विचार किए ही, या स्तोक विचारहीतैं बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति होय जाय है। बहुरि बहुत काल मिथ्यात्वका उदय रहै, तौ जैसी अनादि मिथ्या-

दृष्टीकी दशा तैसी याकी दशा हो है। गृहीत मिथ्यात्वकौं भी ग्रहै हैं। निगोदादिविषै भी रुलै है। याका किछू प्रमाण नाहीं।

बहुरि कोई जीव सम्यक्त्व भ्रष्ट होय सासादन हो है। सो तहा जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल रहै है, सो याका परिणामकी दशा वचनकरि कहनेमैं आवती नाहीं। सूक्ष्मकालमात्र कोई जातिके केवल ज्ञानगम्य परिणाम हो हैं। तहां अनंतानुबंधीका तौ उदय हो है, मिथ्यात्वका उदय न हो है। सो आगम प्रमाणतैं याका स्वरूप जानना।

बहुरि कोई जीव सम्यक्तैं भ्रष्ट होय, मिश्रगुणस्थानकौं प्राप्त हो है। तहां मिश्रमोहनीयका उदय हो है। याका काल मध्य अन्तर्मुहूर्तमात्र है। सो याका भी काल थोरा है, सो याकै भी परिणाम केवलज्ञानगम्य हैं। यहाँ इतना भासै है— जैसैं काहूकौं सीख दई तिसकौं वह किछू सत्य किछू असत्य एकै काल मानैं। तैसैं तत्वनिका श्रद्धान अश्रद्धान एकै काल होय, सो मिश्रदशा है। केई कहै हैं—हमकौं तौ जिनदेव वा अन्य देव सर्व ही वंदने योग्य हैं। इत्यादि मिश्र श्रद्धानकौं मिश्रगुणस्थान कहै हैं, सो नाहीं। यहु तौ प्रत्यक्ष मिथ्यात्वदशा है। व्यवहाररूप देवादिकका श्रद्धान भए भी मिथ्यात्व रहै है, तो याकै तो देव कुदेवका किछू ठीक ही नाहीं। याकै तौ यहु विनयमिथ्यात्व प्रगट है ऐसैं जानना। ऐसैं

सन्मुख मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया । प्रसंग प
कथन किया है । या प्रकार जैनमतवाले मि
स्वरूप निरूपण किया । यहां नाना प्रकार मि
कथन किया है, ताका प्रयोजन यह जानना, जे
निकौं पहिचानि आपविषै ऐसा दोष होय, तौ त
सम्यक्श्रद्धानी होना । औरनिहीकै ऐसे दोष दे
होना । जातैं अपना भला बुरा तौ अपने परिणा
औरनिकौं रुचिवान देखिये, तौ कछु उपदेश दे
भला कीजिये । तातैं अपने परिणाम सुधारनेका
योग्य है । सर्व प्रकारके मिथ्यात्वभाव छोरि
होना योग्य है । जातैं संसारका मूल मिथ्यात्व
समान अन्य पाप नाहीं है । एक मिथ्यात्व अ
अनंतानुबंधीका अभाव भए इकतालिस प्रकृति
ही मिट जाय । स्थिति अन्तःकोटाकोटी साग
अनुभाग थोरा ही रह जाय । शीघ्र ही मोक्ष
बहुरि मिथ्यात्वका सद्भाव रहे अन्य अनेक उ
मोक्ष मार्ग न होय । तातैं जिस तिस उपाय
मिथ्यात्वका नाश करना योग्य है ।

इति मोक्षमार्ग प्रकाशक नाम शास्त्रविषै जैनमतवाले
निरूपण जामैं भया ऐसा सातवां अधिकार सपू

## आचार्य कल्प पं० टोडरमलजी रचित

कवित्त ( मनहरण ३१ वर्ण )

---

कोऊ नय निश्चय से आतमा को शुद्ध मान ।
भये हैं स्वच्छन्द न पिछाने निज शुद्धता ॥
कोऊ व्यवहारदान शील तप भाव को ही ।
आतम को हित जान छांडत न मुद्धता ॥१॥
कोऊ व्यवहारनय निश्चय के मारग को ।
भिन्न भिन्न पहिचान करैं निज उद्धता ॥२॥
।य जाने निश्चय के भेद व्यवहार सब ।
कारण है उपचार माने तब :